मोतीलाल नेहरू

स्वरूप रानी नेहरू

मोतीलाल नेहरू 1925 में आनन्द भवन में स्वरूप रानी व कमला नेहरू के साथ बैठे हुये।
पीछे खड़े हैं जवाहर लाल नेहरू, विजयलक्ष्मी, कृष्णा, इन्दिरा व रणजीत पंडित।

मोतीलाल नेहरू

लेखक
डा० गौरी शंकर राजहंस

कांग्रेस शताब्दी १९८५ समारोह समिति

प्रधान मंत्री भवन
नई दिल्ली

भूमिका

हमारे स्वतंत्रता आन्दोलन ने यह दिखला दिया कि किस तरह पीड़ित और दबे हुये लोगों ने अपने साहस और बलिदान से आज़ादी हासिल की। हमारी राजनीतिक स्वाधीनता सभी क्षेत्रों में महान राष्ट्रीय पुनर्जागरण का हिस्सा था। हमारे यहाँ चरित्रवान और प्रतिभाशाली नेता हुये, जिनके कार्यों से हर नई पीढ़ी को परिचित कराना ज़रूरी है।

आज हम स्वतंत्र हैं, लेकिन हमें यह मानकर नहीं चलना है कि आज़ादी तो अब मिल ही गई, आगे कुछ नहीं करना है। हमारी आज़ादी तभी सुरक्षित रह सकती है जब हम जागरूक रहेंगे।

इस पुस्तक-माला का उद्देश्य नई पीढ़ी को नये भारत के बारे में जानकारी देना है। यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के शताब्दी के अवसर पर निकाली जा रही है। मेरी आशा है कि इससे हमारे देशवासी अपनी महान परम्परा पर गर्व करेंगे और साथ ही उन आदर्शों को समझने में मदद मिलेगी जिनसे स्वतंत्रता सेनानियों को असंभव को सम्भव करने में प्रेरणा मिली

राजीव गांधी

(राजीव गांधी)

नई दिल्ली,
20 अप्रैल, 1985

दो शब्द

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के वर्तमान अध्यक्ष एवं प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी के नेतृत्व में १९८३ में कांग्रेस शताब्दी समारोह समिति का गठन किया गया। श्री राजीव गांधी का यह विचार था कि शताब्दी समारोह के एतिहासिक अवसर पर कांग्रेस के आन्दोलनकारी स्वरूप, देश की आज़ादी में इसके नेताओं के योगदान एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण और निर्माण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका से सर्व-साधारण को,खासतौर पर नयी पीढ़ी को, अवगत कराया जाए। पुस्तक उप-समिति का गठन इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित होकर किया गया है। शताब्दी वर्ष में इस उप-समिति का कार्यक्रम प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों की जीवनियां और राष्ट्रीय पुनर्जागरण एवं निर्माण में कांग्रेस का योगदान और उपलब्धियों से सम्बंधित पुस्तकें प्रकाशित करना है।

पंडित मोती लाल नेहरू की यह जीवन-गाथा संक्षिप्त होते हुए भी सम्पूर्ण और प्रामाणिक है। इसमें तत्कालीन परिस्थितियों के विवेचन के साथ-साथ मोती लाल नेहरू के स्वतंत्रता संग्राम में प्रवेश और कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी भूमिका और उपलब्धियों का जनसाधारण के दृष्टिकोण से रोचक विवरण है।

पुस्तक के प्रकाशन में जो सहयोग श्रीमती शीला कौल, संयोजिका कार्यान्वयन समिति एवं अन्य उप-समितियों के संयोजकों से मिला है, उसके लिए आभारी हूँ। साथ ही मैं नेहरू मेमोरियल संग्रहालय एवं पुस्तकालय, के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ।

एक लेखक के रूप में डा. गौरी शंकर राजहंस, सांसद, का प्रयास सराहनीय है।

कृष्णा साही

विषय सूची

पृष्ठ

संघर्षमय बचपन

अपने पूर्वजों का स्मरण करते हुए अपनी आत्मकथा में पं. जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है "हम लोग कश्मीरी थे। करीब दो सौ साल पहले, अठारहवीं शताव्दी के शुरू में, हमारे पूर्वज पहाड़ी घाटियों से मैदानी क्षेत्र में आ गये, धन और प्रसिद्धि हासिल करने के लिए। वे मुगल सल्तनत के अंतिम दिन थे। औरंगजेब की मृत्यु के वाद मुगल सल्तनत तेजी से पतन की ओर जा रही थी। उन दिनों वादशाह फर्रुखसियर मुगल सम्राट थे। हमारे पूर्वज का नाम राज कौल था और उनकी गिनती उन दिनों संस्कृत तथा फारसी के प्रसिद्ध विद्वानों में होती थी। सन् १७१६ के आस-पास जव वादशाह फर्रुखसियर कश्मीर आए तो उनकी नजर पं. राज कौल पर पड़ी। उन्होंने पं. राज कौल को दिल्ली में वसने के लिए राजी कर लिया। वदले में उन्हें एक जागीर दी गई और शहर के वीच से गुजरने वाली नहर के किनारे एक मकान दिया गया।

नहर के किनारे मकान होने के कारण राज कौल के परिवार को 'नेहरू' के नाम से पुकारा जाने लगा। पहले वे लोग कौल-नेहरू कहलाते थे। वाद के वर्षों में कौल की पदवी लुप्त प्राय हो गई और ये लोग केवल नेहरू के नाम से जाने जाने लगे।

बाद के वर्षों में नेहरू-परिवार ने बहुत संघर्षपूर्ण समय देखा। मुगल बादशाह ने उन्हें जो जागीर दी थी, वह भी समाप्त हो गई। राज कौल के पौत्र मौसाराम अंतिम व्यक्ति थे, जिन्होंने नाम मात्र के लिए जागीर संभाली थी। मौसाराम के पुत्र लक्ष्मी नारायण नेहरू मुगल दरबार में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पहले वकील नियुक्त हुए। सन् १८५७ के सिपाही विद्रोह के समय लक्ष्मी नारायण नेहरू के पुत्र गंगाधर नेहरू दिल्ली में पुलिस के कोतवाल थे।

१८५७ के सशस्त्र विद्रोह ने नेहरू परिवार को बुरी तरह झकझोर दिया। परिवार ने न केवल सारी सम्पत्ति गंवा दी बल्कि पुराने कागजात भी जाते रहे। गदर के कारण हजारों परिवार शरणार्थी बन कर दिल्ली से आगरा चले गये। उन्हीं परिवारों में पं. गंगाधर नेहरू का भी परिवार था। परिवार की अवर्णनीय क्षति को पं. गंगाधर नेहरू बर्दाश्त नहीं कर सके। फलस्वरूप ३४ वर्ष की उम्र में ही, १८६१ के प्रारम्भ में, उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु के तीन महीने बाद ६ मई को उनकी पत्नी जियोरानी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया – "मोतीलाल"।

पं. गंगाधर की मृत्यु से परिवार को बहुत बड़ा धक्का लगा और भरण-पोषण का पूरा भार दो नौजवान लड़कों वंशीधर और नंदलाल – पर आ पड़ा। दोनों नवयुवकों ने बड़े साहस और धैर्य के साथ परिवार पर आई हुई विपत्ति का सामना किया। मोतीलाल के बड़े भाई वंशीधर नेहरू ने कुछ दिनों बाद ब्रिटिश सरकार की दीवानी अदालत में नौकरी कर ली। वे परिश्रमी और लगनशील थे। अतः क्रमशः पदोन्नति पाते हुए उन्होंने सबार्डिनेट जज का स्थान प्राप्त कर लिया। वंशीधर की नौकरी ऐसी थी, जिसमें उनका प्रायः तबादला होता रहता था। इसलिए दोनों भाइयों ने यह तय किया कि मोतीलाल का पालन-पोषण मंझले भाई नंदलाल नेहरू करें।

नंदलाल ने राजस्थान के खेतड़ी रियासत में एक छोटी सी नौकरी कर ली और अपनी कार्य-कुशलता, निष्ठा और परिश्रम के बल पर धीरे-धीरे तरक्की करते हुए वे उस रियासत के दीवान हो गए। इस पद पर वे दस वर्ष तक बने रहे। बाद में उन्होंने कानून का अध्ययन किया और आगरा में वकालत शुरू की। आगरा में हाई कोर्ट की स्थापना हुए अधिक समय नहीं

हुआ था। नंदलाल ने इसी नव-स्थापित हाई कोर्ट में अपनी वकालत शुरू की। बाद में जब यह हाई कोर्ट आगरा से इलाहाबाद चला गया तो उसके साथ नेहरू-परिवार भी इलाहाबाद आ गया।

तब से इलाहाबाद नेहरू परिवार का घर बना रहा। इलाहाबाद में एक कुशल वकील के रूप में नंदलाल ने पर्याप्त ख्याति अर्जित की। हाई कोर्ट के वकीलों में वे अग्रगण्य माने जाते रहे।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, "मेरे पिता पं. मोतीलाल नेहरू को अपने बड़े भाई नंदलाल से जो प्रेम और स्नेह मिला, उसका शब्दों में वर्णन करना कठिन है। वह एक तरह से पितृ-वात्सल्य और भ्रातृ-वात्सल्य का मिलाजुला रूप था।"

उन दिनों मोतीलाल कानपुर और इलाहाबाद में स्कूल और कालेज की शिक्षा ले रहे थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा फारसी और अरबी तक सीमित थी। बारह वर्ष के बाद ही उन्होंने अंग्रेजी सीखना शुरू किया।

प्रारम्भ में मोतीलाल कोई मेधावी छात्र नहीं थे। उन्हें घर से बाहर खेले जाने वाले खेलों, खासकर कुश्ती, का बहुत शौक था। मोतीलाल म्योर सेन्ट्रल कालेज के प्रिंसिपल हैरीसन से अत्यंत प्रभावित थे और उनकी एक चिट्ठी को उन्होंने अपने जीवन के अंतिम समय तक संभाल कर रखा था।

उन दिनों बी.ए. की परीक्षा आगरा में हुआ करती थी। मोतीलाल बिना किसी तैयारी के बी.ए. की परीक्षा में बैठ गये। पहले पर्चे में ही उन्हें आशंका हुई कि वे परीक्षा में बहुत अच्छा नहीं कर सकेंगे। इसी कारण शेष पर्चे उन्होंने नहीं दिया और बदले में ताजमहल देखने चले गये। बाद में उनके प्रोफेसर ने उन्हें बुलाकर फटकारा और कहा कि उनका पहला पर्चा बहुत अच्छा हुआ था और शेष पर्चों में शामिल न होकर मोतीलाल ने भयानक भूल की। परन्तु मोतीलाल दुबारा बी.ए. की परीक्षा नहीं दे सके और इस तरह वे स्नातक नहीं बन पाये।

संयोग से मोतीलाल को पारिवारिक दायित्व का बोध हुआ। उन्हें इस

बात की चिंता होने लगी कि जीवन-यापन और परिवार के पालन-पोषण के लिये कुछ करना आवश्यक है। उस समय वकालत ही एक ऐसा पेशा था, जिसमें नेहरू परिवार को सफलता मिल चुकी थी, उसमें आमदनी भी अच्छी थी। इसके अलावा मोतीलाल के सामने अपने भाई नंदलाल का भी उदाहरण था।

सफल वकील

मोतीलाल ने हाई कोर्ट के वकीलों की परीक्षा में कठिन परिश्रम किया। फलतः इस परीक्षा में वे न केवल उत्तीर्ण हुए बल्कि सर्वप्रथम भी घोषित किये गये और उन्हें स्वर्ण पदक भी प्राप्त हुआ।

प्रारम्भ में मोतीलाल ने कानपुर के जिला न्यायालय में वकालत शुरू की और कठिन परिश्रम से भारी सफलता प्राप्त की। तीन वर्ष के बाद वे इलाहाबाद हाई कोर्ट में वकालत करने के लिए चले गए। दुर्भाग्य से कुछ दिनों बाद उनके बड़े भाई नंदलाल का अचानक देहावसान हो गया। मोतीलाल के लिए यह वज्राघात था। नंदलाल न केवल उनके बड़े भाई थे बल्कि उन्होंने उन्हें पिता के समान प्यार दिया था। इसके अतिरिक्त परिवार के मुखिया के एकाएक उठ जाने से इतने बड़े परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी भी अचानक मोतीलाल पर आ पड़ी।

मोतीलाल काम में पूरी तरह डूब गये और कुछ महीनों तक अपने को शेष दुनिया से काट सा लिया। उन्होंने कठोर परिश्रम किया। नंदलाल के मुवक्किल भी उनके पास धीरे-धीरे आने लगे। मोतीलाल ने बुद्धिमत्ता और कार्यकुशलता से न केवल यश प्राप्त किया बल्कि पर्याप्त धन अर्जित

किया। परिवार में आमदनी बढ़ने के साथ खर्च भी बढ़ता गया। मोतीलाल को धन जमा करने से चिढ़ थी। वे और उनका परिवार बड़े ठाट-बाट से पश्चिमी तौर-तरीके से रहने लगे।

मोतीलाल के पहले विवाह का अंत दुखद हुआ। मां और पुत्र दोनों की मृत्यु हो गई। उसके शीघ्र बाद मोतीलाल का फिर विवाह हो गया। उनकी दूसरी पत्नी स्वरूप रानी थीं उनकी और मोतीलाल की जोड़ी बड़ी ही आकर्षक थी। उनकी पहली संतान, जो एक पुत्र था, जीवित नहीं रही। १४ नवम्बर, १८८९ को उनके दूसरे पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम "जवाहर लाल" रखा गया। नेहरू परिवार के लिए इससे बढ़कर प्रसन्नता का कोई अवसर नहीं था।

वकालत के पेशे में मोतीलाल को अभूतपूर्व सफलता मिली। ३५ वर्ष की उम्र में उनकी आमदनी लगभग २००० रुपये महीने थी और अगले पांच वर्षों में उनकी आमदनी दस हजार रुपये पहुंच गई। उन दिनों अधिकतर मुकदमे जमींदारों की जायदादों से सम्बंधित होते थे। जमींदारों के पास बेहिसाब पैसा था। इसलिए वे अच्छे वकील को मुंहमांगी फीस देते थे।

मोतीलाल ने अपने लड़के जवाहर लाल की शिक्षा पर मुक्त हस्त से धन व्यय किया। साथ ही साथ अपने भतीजों की शिक्षा पर भी उन्होंने इसी तरह व्यय किया। उनके भतीजे उनके प्यारे भाई नंदलाल की मृत्यु के बाद मोतीलाल पर ही निर्भर थे। इस बीच सन १९०० में मोतीलाल ने इलाहाबाद में नंबर एक चर्च रोड का मकान खरीदा। बहुत बड़े क्षेत्रफल में फैला यह मकान जीर्णशीर्ण था। मोतीलाल ने नये सिरे से यहां मकान बनवाया और उसका नाम रखा 'आनंद भवन'। इस भवन में फर्नीचर और सजावट का बहुमूल्य सामान विदेशों से लाया गया था। बाद के वर्षों में आनंद भवन देश की राजनीति का प्रमुख केन्द्र बना रहा।

मोतीलाल सुरूचि-सम्मन्न व्यक्ति थे। उनका रहन-सहन पश्चिमी ढंग का था। संभवतः, इसका एक कारंण उनकी विदेश यात्राएं थीं। १८९९ और १९०० ईस्वी में उन्होंने दो बार यूरोप का भ्रमण किया था। उन दिनों

कश्मीरी पंडितों की बिरादरी में विदेश-भ्रमण को पाप समझा जाता था और विदेश से लौटने वाले व्यक्तियों को भारत आकर प्रायश्चित करना पड़ता था। मोतीलाल रूढ़िवादी नहीं थे, अतः उन्होंने प्रायश्चित करने से इंकार कर दिया। इस पर उन्हें जाति से बहिष्कृत कर दिया गया लेकिन मोतीलाल रूढ़िवादियों के सामने झुके नहीं। मोतीलाल अपने एक मात्र पुत्र जवाहर लाल को अच्छी से अच्छी शिक्षा देना चाहते थे। इसके लिए अंग्रेज अध्यापकों द्वारा उन्हें घर पर ही शिक्षा दिलायी गई। मोतीलाल स्वयं भी कठोर अनुशासनप्रिय थे और दूसरों से भी ऐसी ही अपेक्षा करते थे। जवाहर लाल ने अपनी आत्मकथा में अपने पिता के क्रोध की एक दिलचस्प घटना का वर्णन किया है। हुआ यह कि पिता की मेज पर दो फाउंटेनपेनों को पड़ा देख कर छह वर्षीय जवाहर लाल नेहरू ने सोचा कि उन्हें दो कलमों की आवश्यकता नहीं हो सकती है। उन्होंने धीरे से एक कलम अपने लिए उठा लिया । जब इस कलम की खोज हुई तो डर के मारे जवाहर लाल ने अपना अपराध स्वीकार नहीं किया। अंततः कलम मिल गयी और यह साबित हो गया कि जवाहर लाल ने ही उसे उठाया था। फिर क्या था, मोतीलाल ने जवाहर लाल को बुरी तरह पीटा और इतनी कठोर सजा दी कि कई दिनों तक चोट पर मलहम लगाया जाता रहा।

मई, १९०५ में मोतीलाल सपरिवार तीसरी बार यूरोप गए। अपने कुछ अंग्रेज मित्रों के सहयोग से उन्होंने जवाहर लाल को इंग्लैंड के प्रसिद्ध हैरो स्कूल में दाखिल करने की व्यवस्था कर दी।

जवाहर लाल से विदा लेते समय मोतीलाल ने अपने होटल से एक दर्दनाक पत्र पुत्र के नाम लिखा— "तुम्हें यह बात दिमाग में अवश्य रखनी चाहिए कि इस संसार में जो सबसे कीमती खजाना हमारे पास है और कदाचित आने वाले दूसरे संसारों में भी जो हमारे लिए सबसे कीमती होगा, उसे तुम्हारे रूप में हम यहीं छोड़ जा रहे हैं। तुम्हारी अपनी भलाई के लिए हम जुदाई की इस पीड़ा से पीड़ित हो रहे हैं...... वस्तुतः यह तुम्हें एक वास्तविक मनुष्य बनाने का प्रश्न है, जो तुम्हें हर हालत में बनना है। यह हमारे लिए अत्यधिक रूप से स्वार्थी बात होगी— बल्कि इसे पापपूर्ण कहना चाहिए— कि तुम्हें अपने पास बनाए रखें और बाद में बहुत थोड़ी शिक्षा या

शिक्षा के बिना केवल धन छोड़ जाए।"

"मेरा ख्याल है कि मैं बिना किसी प्रकार की गर्वोक्ति से कह सकता हूँ कि मैं नेहरू परिवार के वैभव की नींव रखने वाला हूँ। मेरे प्यारे बेटे, मैं तुमको उस व्यक्ति के रूप में देखता हूँ जो मेरे द्वारा रखी गई नींव पर निर्माण करेगा और इस बात का संतोष प्राप्त करेगा कि यश का एक भवन आकाश में सिर उठाए खड़ा है..... मुझे इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि तुम मेरी आशाओं के अनुकूल, बल्कि इससे भी अधिक ऊँचे उठोगे......।"

मोतीलाल सक्रिय राजनीति में

राजनीति में मोतीलाल शुरू में बड़े बेमन से आए। सन् १८८८ में जब इलाहाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो १४०० प्रतिनिधियों की सूची में एक नाम मोतीलाल का भी था। वह इस तरह वर्णित था—"पंडित मोतीलाल, हिन्दू, ब्राह्मण, वकील हाई कोर्ट"। दूसरे वर्ष १८८९ में मोतीलाल विषय निर्वाचन समिति में चुने गए। दो वर्ष बाद नागपुर में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में वे पुनः विषय निर्वाचन समिति के सदस्य चुने गए। इसके बाद प्रायः दस वर्षों तक कांग्रेस प्रतिनिधियों की सूची में मोतीलाल का नाम नहीं मिलता है। इन वर्षों में मोतीलाल ने कठोर परिश्रम कर अपनी वकालत जमा ली थी।

इधर मोतीलाल अपनी वकालत में व्यस्त थे, उधर देश में राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकड़ रहा था। सारा देश प्लेग, अकाल और राजनीतिक दमन से दुखी हो रहा था। ऐसे समय में भारत में लार्ड एलिगन के स्थान पर लार्ड कर्जन वायसराय बन कर आए। अब तक आए हुए सभी वायसरायों में ये उम्र में सबसे छोटे थे। साम्राज्यवाद की मनोवृत्ति इनमें कूट-कूट कर भरी थी। इसके पहले वे इंग्लैंण्ड में भारत के उप सचिव भी रह चुके थे। वे भारत की राजनीतिक आकांक्षाओं के कट्टर दुश्मन थे। भारत की राजनीतिक

स्वाधीनता की कल्पना तो उस समय की भी नहीं जा सकती थी। अपनी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति के अनुकूल जो रास्ता उन्होंने पकड़ा उससे देश में असंतोष की भयानक ज्वाला भड़क उठी।

उन दिनों राष्ट्रीय आंदोलन का केन्द्र बंगाल था, जहां प्रतिदिन राष्ट्रीय भावना फैलती जा रही थी। लार्ड कर्जन ने इस राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने के लिए बंगाल को दो भागों में बांटने का फैसला किया। कहा गया कि शासन कि सुविधा के लिए ऐसा किया जा रहा है। परंतु सच तो यह था कि हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों को भड़का कर उनके लिए अलग प्रांत बनाने की योजना थी।

लार्ड कर्जन के इस घृणित कार्य से सारे बंगाल में आग सी लग गई। बंगाल के छोटे-छोटे गांव तक में विरोध—सभाएं हुईं, जिनमें बंग—भंग का घोर विरोध किया गया। सारे बंगाल के बंगाली मिल गए। उन्होंने फैसला कर लिया कि लार्ड कर्जन बंगाल के दो टुकड़े कर सकते हैं पर वे हमारे हृदय के दो टुकड़े नहीं कर सकते। क्या अमीर, क्या गरीब, सब लोग एक हृदय से बंग—भंग का विरोध करने लगे। मात्र बंगाल में ही नहीं, सारे भारत में लार्ड कर्जन की इस कार्रवाही से सनसनी फैल गई। सन् १९०३ के दिसम्बर मास से १९०५ के अक्टूबर मास तक बंगाल में लगभग २००० सभाएं हुईं, जिनमें बंग—भंग का विरोध किया गया। इनमें से कुछ सभाओं में ५० हजार तक लोग इकट्ठा होते थे, जिनमें हिन्दू, मुसलमान समान रूप से उत्साह प्रदर्शित करते थे। भारत के ब्रिट्रिश शासन के इतिहास में ऐसा मौका कभी नहीं आया, जब किसी वायसराय के कार्य पर इस तरह घृणा प्रकट की गयी हो। लार्ड कर्जन इससे बहुत निराश हो गये। अब वे यह प्रयास करने लगे कि किसी तरह हिन्दू और मुसलमानों में फूट पड़ जाए। इसके लिए वे पूर्वी बंगाल गए और मुसलमानों की बड़ी सभाओं में यह घोषणा की कि बंग—भंग केवल शासन की सुविधा के लिए नहीं किया जा रहा है बल्कि इसका एक खास उद्देश्य यह भी है कि नया मुसलमानी प्रान्त कायम हो और उसमें मुसलमानों को प्रधानता दी जाए। कर्जन की यह चालबाजी बहुत हद तक सफल हो गई और बंगाल के कुछ मुसलमान कर्जन की ओर झुक गए। परन्तु अधिकतर मुसलमान अटल रहे और वे बंग—भंग का विरोध करते रहे।

यद्‌यपि बंगालियों का आन्दोलन जारी रहा, तथापि अंग्रेज सरकार ने उनके जनमत का घोर अनादर करते हुए सन्‌ १९०५ में यह सूचना कर दी कि इंग्लैण्ड के स्टेट सेक्रेटरी ने बंग–भंग को मंजूर कर लिया है और भंग किये हुए प्रांत में उत्तरी बंगाल के छः जिले मिलाए गए हैं। सारे देश के जनमत का निरादर कर सरकार ने बंग-भंग के प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। इस कारण देश में असंतोष की भारी आग भभक उठी।

कांग्रेस के गरम दल के नेताओं ने तो इसका घोर विरोध किया ही, नरम दल के नेताओं ने भी इसकी कम निन्दा नहीं की। गोपालकृष्ण गोखले, जो नरम दल के शीर्षस्थ नेता थे, ने बंग-भंग का विरोध करते हुए कहा–"हमारे बंगाली भाइयों पर दुष्टतापूर्ण अन्याय किया गया है और सारा देश इतने गहरे दुख और क्रोध से ऐसा विकम्पित हो गया है, जैसा कि वह कभी नहीं हुआ था। वंग-भंग की योजना अंधेरे में बनाई गई है और जनता के अत्यन्त भयंकर विरोध के होते हुए भी अमल में लाई गई है। गत अर्ध-शताब्दी में सरकार का इतना भयंकर विरोध न हुआ, जैसा कि इस समय हुआ। यह घटना नौकरशाही के निकृष्टतम स्वरूप का, उसके द्वारा किये गए लोकमत की अवहेलना का, उसके उच्च बुद्धिमत्ता के घमन्ड का, और उसके द्वारा लोगों के भावों को निर्दयतापूर्वक कुचलने की मनोवृत्ति का और शासित लोगों के बजाय सरकारी नौकरों के हितों को अधिक महत्व देने का स्पष्ट उदाहरण है।"

इंगलैण्ड में भी कुछ उदार हृदय लोगों ने वंग-भंग का विरोध किया और इस न्निर्णय को एक अदूरदर्शितापूर्ण कदम बताया। लार्ड मेकडॉनल्ड ने बंग-भंग के निर्णय को प्लासी के युद्ध के बाद की भूलों में सबसे भारी बताया। परन्तु ब्रिटिश सरकार पर इसका कोई असर नहीं हुआ। तत्कालीन भारत सेक्रेटरी लार्ड पार्ले ने बंग-भंग को एक निश्चित घटना कह कर लोकमत की बड़ी अवहेलना की।

वंग-भंग ने भारत को जगा दिया। इससे देशवासियों में नई स्फूर्ति का संचार हुआ। लोगों ने यह महसुस किया कि अपने देश का सूत्र अपने हाथ आए बिना कल्याण नहीं हो सकता। देश का नवयुवक समाज अपने प्यारे देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील होने लगा। पहले पहल स्वदेशी वस्त्र

धारण कर विदेशी माल का बहिष्कार करना शुरू हुआ। इसमें आंशिक सफलता भी मिली। संक्षेप में, बंगाल के विभाजन ने भारत की राजनीति को काफी उत्तेजनापूर्ण बना दिया। कांग्रेस, गरम और नरम दो दलों में विभाजित हो गई। और इनके बीच की रस्साकशी भारतीय राजनीति पर हावी रही। गरम दल में वे आग उगलने वाले नौजवान थे, जो राजनीतिक प्रतिहिंसा के खतरनाक खेल को खेलना चाहते थे। इसके विपरीत नरम दल में कांग्रेस के वे प्रमुख नेता थे, जो कांग्रेस के जन्म से ही इससे सम्बद्ध थे। इन लोगों में फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी जैसे प्रमुख नेता थे। परन्तु सबसे प्रमुख थे गोपाल कृष्ण गोखले। मोतीलाल नरम दल के समर्थक थे और गोखले उनके आदर्श थे।

बंगाल के विभाजन की घोषणा के बाद दिसम्बर १९०५ में बनारस में होने वाले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली बैठक में ऐसा लगता था कि नरम और गरम दल वालों के बीच एक सीधी टक्कर होगी। परन्तु प्रमुख नेताओं के बीचबचाव ने खुले संघर्ष को बचा लिया। इस बैठक में मोतीलाल एक प्रतिनिधि के रूप में शामिल हुए थे।

२९ मार्च १९०७ को इलाहाबाद में प्रथम प्रांतीय सम्मेलन प्रारम्भ हुआ, जिसमें मोतीलाल ने अध्यक्षीय भाषण में नरम दल का पक्ष लिया। इस भाषण में मोतीलाल ने अवैधानिक तरीकों की निंदा की और कहा कि हम सांवैधानिक आंदोलनकर्ता हैं और जितने सुधारों को हम लाना चाहते हैं वे वैधानिक रूप से गठित सत्ता के माध्यम से ही आने चाहिए।

राजनीति में मोतीलाल की इस सक्रिय भूमिका की पृष्ठभूमि में उनके पुत्र जवाहर लाल की प्रेरणा ही कार्य कर रही थी। हैरो से लिखे गए सभी पत्रों में जवाहर लाल अपने पिता से स्वदेशी आंदोलन की प्रगति के बारे में पूछा करते थे। जवाब में मोतीलाल नरम दल वालों का पक्ष लेते थे और गरम दल वालों की तीखी आलोचना करते थे। इसके विपरीत जवाहर लाल अपने तर्क से गरम दल वालों का पक्ष लेते रहे।

जून १९१० में जवाहर लाल ने द्वितीय श्रेणी की आनर्स की डिग्री प्राप्त की और कैम्ब्रिज से स्नातक हो गए। बाद में अपने पिता की

इच्छानुसार उन्होंने 'इनर टेम्पिल' में प्रवेश ले लिया।

दो वर्ष बाद अगस्त,१९१२ में मसूरी में पारिवारिक पुनर्मिलन हुआ। जवाहर लाल की मां स्वरूप रानी, जो बीमार रहती थीं, जवाहर लाल के आने से अचानक बहुत प्रसन्न हो उठीं और उनकी बीमारी रातों-रात गायब हो गई। उन दिनों मोतीलाल की प्रसन्नता की सीमा नहीं थी।
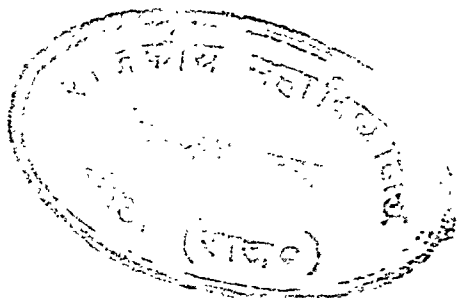
मोतीलाल का पारिवारिक स्नेह

मोतीलाल अपने पुत्र के लिए उपयुक्त दुल्हन की तलाश में थे। उनकी नजर में कई लड़कियां थीं। उनके चित्र भी उन्होंने जवाहर लाल को इंगलैन्ड भेजे थे, लेकिन जवाहर लाल ने उस समय की परम्परा का निवाह करते हुए उपयुक्त कन्या चुनने का भार पिता को सौंप दिया। पुत्र के इस व्यवहार से वे बड़े प्रसन्न हुए।

जवाहरलाल और कमला का विवाह ८ फरवरी १९१६ को दिल्ली में बहुत ही धूम-धाम से हुआ। शहर से थोड़ा हटकर एक शहरनुमा 'नेहरू वेडिंग कैम्प' बनाया गया, जहां ७ दिनों तक विवाह-उत्सव मनाया गया। मोतीलाल के आदेश पर विवाह के दिन पर पत्नी कमला की मोतियोंजड़ी साड़ी को बनाने में कश्मीरी कारीगरों ने आनंद भवन के बरामदे में बैठकर अपनी कला का कमाल दिखाया था। जवाहर लाल भी जड़ीदार शेरवानी और पगड़ी पहन रखे थे। जोड़ी अपूर्व दीख रही थी।

मोतीलाल उस समय इलाहाबाद में सर्वाधिक समृद्ध और चर्चित व्यक्ति थे और उनकी वकालत चरम सीमा पर थी। उनके घर का रहन-सहन पश्चिमी शैली का था। वह विदेशी कारों का प्रयोग करते थे।

घर में रोज पार्टियां होती थीं, जिन में अधिकतर मेहमान अंग्रेज और उच्च पदों पर आसीन अधिकारी वर्ग के लोग होते थे।

विवाह के बाद कमला नेहरू संयुक्त परिवार में अन्य लोगों के साथ आनंद भवन में रहने लगीं। जवाहर लाल अक्सर जेल में रहते थे या जन कार्यों में लीन रहते थे। इसलिए उनकी आमदनी का कोई निश्चित साधन नहीं था। जब जवाहर लाल ने अपनी इस असुविधा की चर्चा गांधी जी से की तो उन्होंने उन्हें किसी समाचरपत्र का संवाददाता बन जाने या किसी यूनिवर्सिटी/कॉलेज का प्रोफेसर बन जाने की सलाह दी। जवाहर लाल को कांग्रेस महा सचिव के रूप में वेतन दिये जाने की भी बात थी। परन्तु मोतीलाल ने जन कोष से वेतन लेने का विरोध किया। मोतीलाल भविष्यद्रष्टा थे और नहीं चाहते थे कि थोड़ा सा धन कमाने के चक्कर में जवाहर लाल अपना महत्वपूर्ण समय गंवा दें। उन्होंने जवाहर लाल से कहा कि वे एक दिन में इतना धन कमा सकते हैं जो जवाहर लाल और कमला के एक वर्ष के खर्च के लिए पर्याप्त होगा।

मोतीलाल अपनी बहू कमला को बहुत चाहते थे और उन्हें बड़े लाड़-प्यार से रखते थे। १९ नवम्बर १९१७ को कमला ने जब बेटी इंदिरा को जन्म दिया तो रूढ़िवादी प्रवृत्ति की स्वरूपरानी निराश हो गईं। वे पौत्र चाहती थीं। परन्तु मोतीलाल ने उन्हें समझाया और भविष्यवाणी की कि यह लड़की हजारों पोतों से अधिक भाग्यशाली होगी। अंततः उनकी भविष्यवाणी सच साबित हुई।

बाद में कमला के इलाज के लिए जवाहर लाल जेनेवा ले गए। नियमित आमदनी का कोई साधन नहीं था। पर वे किसी से सहायता भी नहीं लेना चाहते थे। अनतः जवाहर लाल ने कमला के आभूषण बेच दिये। मोतीलाल को जब यह पता चला तो उनके मन को बहुत ठेस लगी। उन्होंने जवाहर लाल को यह पत्र लिखा — "तुमने अपने पत्र में कमला की सोने की चूड़ियां बेचने की सलाह दी, इससे मुझे बहुत दुख हुआ..... अपने किसी पिछले पत्र में तुमने लिखा था कि तुम शहर से दूर किसी सस्ते और कम सुविधा वाले बोर्डिंग हाउस में जाना चाहते हो। इससे सस्ता दूसरा बोर्डिंग नहीं है, यह पढ़कर में परेशान हुआ। यूरोप की इस महत्वपूर्ण यात्रा में होने

वाले व्यय के बारे में तुम क्यों चिंता कर रहे हो....।

"तुम एक निश्चित उद्देश्य को लेकर वहां गए हो उसके साथ कमला के जीवन-मृत्यु का प्रश्न जुड़ा है। ऐसी स्थिति में इस प्रकार की बाधा डालना नकली बचत है और एक बहुत गंभीर बात है....। तुम इस तरह कमला और अपने को आराम की जरूरी चीजों से वंचित कर रहे हो। या बहुत नकली बचत होगी। इस तरह तुम अपने उद्देश्य को भी पुरा नहीं कर सकोगे..."

प्रथम महायुद्ध और भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास

सन् १९१४ में यूरोप में मित्र राष्ट्रों और जर्मनी के वीच युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में भारत ने,यह समझकर कि निकट भविष्य में उनकी राजनीतिक आकांक्षाएं पूरी हो जाएंगी, व्रिटिश सरकार की अर्थवल व जनवल से पूरी सहायता की।

सन् १९१५ में वम्वई में आयोजित राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में अध्यक्ष लार्ड सिन्हा ने इस वात पर जोर दिया कि व्रिटिश सरकार भारत के सम्वन्ध में अपनी नीति की स्पष्ट घोषणा कर दे। लोकमान्य तिलक ने भीं यह स्पष्ट रूप से कहा कि अगर व्रिटिश सरकार भारत की राजनीतिक आकांक्षाओं को पूरा करने का वचन दे तो भारत युद्ध में पूरी मदद दे सकता है। इतना ही नहीं, व्रिटिश सरकार की नेक नीयती पर विश्वास कर भारत ने उसे तन, मन, धन से मदद दी। इस मदद को व्रिटिश राजनीतिज्ञों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। पर परिणाम विपरीत ही हुआ। युद्ध समाप्त होने पर व्रिटिश सरकार द्वारा भारत को स्वराज्य के वदले रौलेट ऐक्ट और पंजाव को मार्शल ला दिया गया।

युद्ध के समय भारत को जो लम्बे-चौड़े आश्वासन दिये गये थे वे पानी के बुलबुले की तरह सिद्ध हुए। भारतवासियों की उत्तरोत्तर बढ़ती राष्ट्रीय भावना को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने दमनकारी नीतियां अपनायीं, अमानुषिक उपायों का अवलम्बन लिया। अंग्रेज सरकार ने नवयुवकों को डिफेंस आफ इण्डिया ऐक्ट का सहारा लेकर नजरबन्द किया। इतना ही नहीं, उसने जस्टिस रालेट की अध्यक्षता में एक कमीशन इसलिये बैठाया कि वह भारत के इन उपद्रवों की जांच करे और उन्हें मिटाने के लिए जोरदार उपायों की योजना प्रस्तुत करे।

रालेट कमीशन ने खुलकर जांच करने के बजाए सब जांच गुप्त रूप से की। उसने अपनी रिपोर्ट और सुझाव पेश किए। ये सुझाव नागरिक स्वाधीनेता की जड़ काटने वाले थे। फलतः समूचे देश में विरोध एवं आंदोलन का ज्वार उठ खड़ा हुआ। भारतवासियों ने समझ लिया कि रालेट कमीशन को इन सूचनाओं के अनुसार बना ऐक्ट भारत की नागरिक स्वतंत्रता के लिए बड़ा घातक सिद्ध होगा। इसीलिए आंदोलन उग्रतर होता गया।

दिल्ली कांग्रेस में मदनमोहन मालवीय ने अपने भाषण में सरकार को सावधान किया कि वह रालेट कमीशन की सूचनाओं के अनुसार ऐक्ट बनाने के खतरे से बचे। कई सभाओं में प्रस्ताव पास किये गये और समाचारपत्रों में भी चेतावनी दी गयी कि रालेट कमिटी की रिपोर्ट की सिफारिशें के आधार पर लोगों की बची-खुची स्वतंत्रता छीनने के लिये कानून बनाना ठीक न होगा।

भारत सरकार की स्वेच्छाचारी नौकरशाही ने लोकमत की रत्ती भर परवाह न कर रालेट कमिटी की सिफारिशों के आधार पर कानून बनाने का निश्चय कर लिया और उसके परिणामस्वरूप सरकार ने दो बिल तैयार कर प्रकाशित किये। कौंसिल में सब के सब निर्वाचित भारतीय सदस्यों ने एक स्वर से उसका विरोध किया। उन्होंने बताया कि भारत की नागरिक स्वाधीनता किस प्रकार इन बिलों द्वारा नष्ट की गयी है और किस प्रकार इन बिलों के कानून के रूप में परिणित हो जाने से भले और निर्दोष आदमियों तक को आफत में गिरने का अंदेशा रहेगा। उन्होंने यह भी कहा कि इस

समय बिल के पास करने की कोई जरूरत नहीं है। उन्होंने साफ संकेत दिया कि इन बिलों के पास हो जाने से हिन्दुस्तान में भीषण अग्निज्वाला उठ खड़ी होगी, जिसे बुझाना बहुत कठिन हो जाएगा।

पर अंग्रेज सरकार ने नौकरशाही की सलाह पर चुने हुए प्रतिनिधियों की राय की अवहेलना कर इन बिलों को कानूनी रूप दे दिया। इस पर देश में सनसनी फैल गयी। भारतीय जनता समझ गयी कि अंग्रेज सरकार की नीयत साफ नहीं है।

इसी समय भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर महात्मा गांधी का उदय हुआ। महात्मा गांधी ने घोषणा की कि ये बिल अन्यायपूर्ण और स्वाधीनता का हरण करने वाले हैं। अगर इन बिलों को कानून का रूप दिया जाएगा तो हम इन कानूनों को मानने से इंकार करेंगे और शांति के साथ अवज्ञा करेंगे।
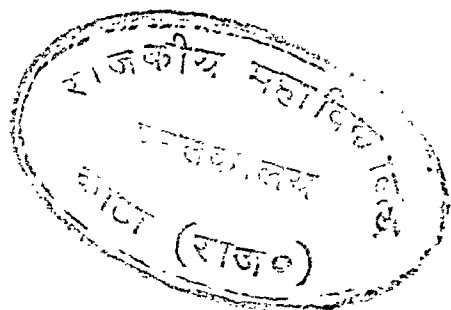
मोतीलाल पर गांधी जी का प्रभाव

भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी के प्रवेश से एक नवीन युग का प्रारम्भ हुआ जिससे न केवल भारत का इतिहास बदल गया बल्कि नेहरू-परिवार का भविष्य भी बहुत प्रभावित हुआ।

महात्मा गांधी ने भारत आने के पूर्व दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह आन्दोलन का सफलतापूर्वक नेतृत्व किया था। वहां प्रवासी भारतीयों पर गोरों द्वारा जैसा अपमान और हीनताजनक व्यवहार किया जाता था वह मानवता का घोर अपमान था। गांधी जी ने इस अपमान के विरुद्ध झंडा उठाया। उन्हें अंततः जेल में डाल दिया गया।

परन्तु प्रवासी भारतीयों के इस कठोर संघर्ष का परिणाम हुआ उनकी अभूतपूर्व विजय। दक्षिण अफ्रीका की गोरी सरकार ने तंग आकर एक कमीशन मुकर्रर किया जिससे प्रवासी भारतवासियों के कष्टों का निवारण हो। गांधी जी को १८ दिसम्बर १९१३ को छोड़ दिया गया। इसके कुछ दिनों के बाद सारे के सारे सत्याग्रही मुक्त कर दिये गये। इस तरह महात्मा

गांधी के नेतृत्व में चलने वाले "सत्याग्रह" संग्राम की सारी सफलता में समाप्ति हुई। यह संग्राम लगातार ८ वर्ष तक चला और इसने सामाजिक न्याय के लिये लड़ने की क्रांतिकारक प्रणाली का एक नया "आविष्कार" मनुष्य जाति के सामने रखा। मानव इतिहास में उसने एक नया अध्याय आरम्भ किया।

मोतीलाल, गांधी जी द्वारा प्रवासी भारतीयों के हित में चलाये हुए सत्याग्रह आन्दोलन को अत्यन्त ही आदर की दृष्टि से देख रहे थे। जवाहर लाल तो पहले से ही गांधी जी के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित थे और उनका अनुसरण करना चाहते थे।

भारत में महात्मा गांधी ने पहले पहल चम्पारण में अपने सत्याग्रह का प्रयोग किया। गांधी जी ने चम्पारण के न्यायालय के सामने इस संबंध में जो वक्तव्य दिया, वह बड़ा ही प्रेरणादायक था। उन्होंने स्वयं लिखा है कि वह दिन मेरे जीवन में ऐसी घटना थी, जो भूले नहीं भुलाई जा सकती और यही दिन चम्पारण के किसानों के लिये और मेरे लिये एक स्मरणीय दिन भी था।

गांधी जी के चम्पारण सत्याग्रह का भी मोतीलाल और जवाहर लाल दोनों पर बहुत अच्छा असर पड़ा।

होम रूल आन्दोलन में मोतीलाल सक्रिय

सन् १९१७ का वर्ष भारत में होम रूल के वर्ष के नाम से जाना जाता है। होम रूल की वकालत लंदन में जन्मी ६९ वर्षीय श्रीमती एनीबेसेण्ट ने की थी, जिन्होंने भारतवर्ष को अपना घर मान लिया था। श्रीमती बेसेन्ट ने कहा कि मैं एक भारतीय घंटी हूँ, जो सभी सोने वालों को जगा रही हूँ, जिससे वे जागें और अपने देश के लिए कार्य करें।

होमरूल आंदोलन को अंग्रेजी सरकार ने कठोरता से दबाना चाहा। श्रीमती बेसेन्ट दो समाचारपत्र भी चला रही थीं। मद्रास के तत्कालीन गवर्नर लार्ड पेण्टलैन्ड ने होमरूल आंदोलन को कुचलने के खयाल से श्रीमती बेसेन्ट के समाचारपत्रों को जब्त कर लिया और अंत में भारत रक्षा कानून के अंतर्गत १६ जून १९१७ को श्रीमती बेसेन्ट और उनके सहयोगियों को ऊटकमण्ड और कोयम्बटूर में नजरबंद करने की आज्ञा जारी की। श्रीमती बेसेन्ट की गिरफ्तारी से ऐसा लगा जैसे भारतीय राजनीति में एक विस्फोट हो आया हो। स्वयं गांधी जी ने वायसराय को पत्र लिखकर श्रीमती बेसेन्ट की नजरबंदी का विरोध किया।

श्रीमती बेसेन्ट की गिरफ्तारी का मोतीलाल पर बहुत गहरा असर पड़ा और २० जून, १९१७ को वे तेज़ बहादुर सप्रू, सी० वाई० चिन्तामणि तथा अन्य नेताओं के साथ मद्रास सरकार की निरंकुश कार्रवाई के विरोध में होमरूल लीग में शामिल हो गए। इसके बाद इलाहाबाद में होमरूल लीग की एक बैठक हुई जिसमें मोतीलाल संयुक्त प्रांत शाखा के सभापति चुने गए और जवाहर लाल संयुक्त मंत्रियों में से एक। २५ जून को मोतीलाल ने इंगलैण्ड के प्रधानमंत्री को तार भेजा जिसमें उन्होंने कहा कि इंगलैण्ड अपने को संवैधानिक कहता है परंतु भारत में असांवैधानिक ढंग से वह होमरूल आन्दोलन का दमन कर रहा है। इसके बाद १९१८ में होमरूल लीग का विशेष प्रांतीय सम्मेलन हुआ जिसमें मोतीलाल ने देशवासियों से, अपने मतभेद राष्ट्रहित में भुला देने और होमरूल आन्दोलन को समर्थन देने की अपील की। इसी सम्मेलन में उन्होंने अंग्रेज सरकार के अन्याय और अत्याचार की कठोर समालोचना की।

मोतीलाल और उनके सहयोगियों के निरंतर आंदोलन के कारण १७ सितम्बर को श्रीमती बेसेन्ट को रिहा कर दिया गया। इन सारी कठिनाइयों ने मोतीलाल के मन में गहरी छाप छोड़ी और उन्होंने नरम दल की राजनीति से संन्यास ले लिया।

इस बीच अंग्रेज सरकार रालेट बिल लाना चाहती थी। यह बिल मानवी स्वाधीनता के लिए बड़ा घातक था। गांधी जी ने अपनी रोग-शैय्या से तत्कालीन वायसराय को एक पत्र लिखकर यह अनुरोध किया कि वे रालेट रिपोर्ट को कानून का रूप न दें। अगर इन्हें कानून का रूप दिया गया तो वे इसके विरोध में सत्याग्रह करेंगे। परन्तु वायसराय ने गांधी जी की राय को स्वीकार नहीं किया और इसे कानून बना दिया। गांधी जी ने डटकर इन बिलों का विरोध करने का संकल्प किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने पूरे देश का दौरा किया।

गांधी जी ने अहिंसा के दिव्य सिद्धांत को जनता के सामने रखकर सत्याग्रह संग्राम की घोषणा की। उन्होंने मद्रास से ३० मार्च १९१९ को सत्याग्रह आरम्भ करने का आदेश जारी किया। बाद में तय कर यह तारीख

बदल दी गयी और ६ अप्रैल १९१९ तय की गयी।

तारीख बदलने की सुचना दिल्ली के नेताओं को नहीं मिल सकी। अतएव उन्होंने गांधी जी के पूर्व आदेशानुसार उसी दिन स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में सत्याग्रह का प्रारम्भ कर दिया। ३० मार्च को एक भारी जुलूस निकाला गया और दिल्ली में पूर्ण हड़ताल की गयी। जुलूस पर गोली चलाई गयी। परन्तु फिर भी लोगों के हृदय में असीम उत्साह था।

६ अप्रैल को पूरे देश में सत्याग्रह हुआ। सैकड़ों स्थानों पर विराट सभाएं हुईं और लाखों लोगों ने इस कार्यक्रम में भाग लिया। कुछ स्थानों पर उपद्रव भी हुए। लाहौर में लूटपाट हुई और गोली चली। कलकत्ता में भी कुछ ऐसी ही घटनाएं हुईं। पंजाब की घटनाओं को सुनकर गांधी जी ८ अप्रैल को दिल्ली के लिए चल पड़े। परन्तु रास्ते में ही उन्हें अंग्रेज सरकार का हुक्म मिला कि पंजाब और दिल्ली के अन्दर वे प्रवेश नहीं कर सकते हैं। उन्होंने इस आदेश को मानने से इंकार कर दिया। इस पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और दिल्ली से कुछ ही दूर पलवल नामक स्टेशन से एक स्पेशल ट्रेन में बिठाकर १० अप्रैल को बम्बई भेज दिया गया।

जलियांवाला बाग और मोतीलाल का हृदय परिवर्तन

महात्मा गांधी के आदेशानुसार ६ अप्रैल को पंजाब के प्रायः सभी नगरों में सम्पूर्ण हड़ताल की गयी थी। हड़तालों के साथ साथ जो बड़े बड़े प्रदर्शन भी हुए उनमें हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि सब जातियों के हजारों लाखों लोगों ने इस दिन मातम मनाया। इस दिन किसी प्रकार का झगड़ा बखेड़ा नहीं हुआ। जनता ने बड़ी शांति से काम लिया।

९ अप्रैल के दिन रामनवमी का त्योहार था। इस त्योहार का उपयोग नेताओं ने हिन्दू-मुसलमानों की एकता के अभूतपूर्व प्रदर्शन के हेतु किया। इस दिन एक बड़ा आलीशान जुलूस निकाला गया। जुलूस में हजारों हिन्दू-मुसलमान थे। इसी समय पंजाब के दो लोकप्रिय नेता डा० किचलू और डा० सत्यपाल को पंजाब से बाहर जाने की आज्ञा दी गयी। जुलूस के लोग डिप्टी कमिश्नर के पास अपनी यह फरियाद सुनाने जा रहे थे कि इन नेताओं को पंजाब से नहीं निकाला जाए, इसी बीच फौज के सिपाहियों ने उन पर गोली चला दी। इस पर एक शांत जुलूस के लोग क्रोध से पागल हो गए।

११ तारीख के सुबह १० बजे फौज की गोलियों से मरे हुए लोगों के

शवों को अन्त्येष्टि क्रिया के लिए श्मशान में ले जाना था। ज्यों ही अधिकारियों ने यह सुना कि शवों के साथ हजारों आदमी जाने वाले हैं त्यों ही डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने यह हुक्म जारी किया कि फौज को आदेश है कि वे सब आवश्यक शक्ति लगाकर अमृतसर में शांति स्थापित करे। लोगों को झुन्ड बनाने या किसी प्रकार के जुलूस निकालने पर पाबंदी है। अगर लोग इकट्ठे होकर झुन्ड बनायेंगे तो उन पर गोलियां चलाई जाएंगी। जबतक शांति स्थापित नहीं हो तब तक भले आदमी घर के अन्दर रहें। मृत मनुष्यों के शव के साथ श्मशान या कब्रिस्तान में आठ–आठ आदमियों से अधिक न जाएं।

अंग्रेज अधिकारी भारतीयों को तंग करने की भावना से प्रेरित थे। वे दमनकारी नीतियां अपनाने, गोलियां चलाने का हर बहाना ढूंढ़ना चाहते थे। पर लोगों ने अधिकारियों की आज्ञा का पालन किया और उन्होंने अधिकारियों को जरा भी मौका न दिया जिससे उन्हें गोली चलाने का बहाना मिल जाए। अंग्रेज अधिकारी दमन पर तुले हुए थे। इसीलिए जालंधर से अमृतसर को सैनिक सहायता भी आ पहुंची। शाम को जालंधर का कमांडिंग आफिसर जनरल डायर भी आ पहुंचा। डिप्टी कमिश्नर ने नगर का शासन उक्त जनरल डायर को सौंप दिया। डिप्टी कमिश्नर का यह काम अंग्रेज कानून के भी सरासर खिलाफ था।

१२ अप्रैल १९१८ को जनरल डायर ने अपनी फौज के साथ शहर में शक्ति–प्रदर्शन किया और उसने कोई एक दर्जन आदमियों को इस शक में गिरफ्तार किया कि उन्होंने दंगे में हिस्सा लिया था। १२ तारीख तक इस प्रकार की कोई घोषणा शहर में नहीं की गयी थी कि शहर में मार्शल ला लागू किया गया है और इस पर अब फौजी अधिकारियों का शासन रहेगा।

बैसाखी के दिन १३ अप्रैल को अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा हुई। कुछ लोगों का कहना है कि सरकार ने सार्वजनिक सभा पर पाबंदी लगा दी थी परन्तु नगर के अधिकांश लोग इस पाबंदी से अवगत नहीं थे। जनरल डायर ने बाद में हंटर कमिटी के सामने जो गवाही दी, उससे भी प्रकट होता है कि इस घोषणा का ज्ञान अधिकांश लोगों को नहीं

था। ऐसी हालत में लोग अगर कोई सभा करते तो उसमें इन बेचारों का क्या दोष था?

त्योहार की वजह से हजारों लोग बाहर से आए हुए थे, जिन्हें इस घोषणा का बिलकुल भी ध्यान नहीं था। इसके आलावा एक लड़का टिन का डिब्बा बजा कर जलियांवाला बाग में सभा होने की घोषणा कर रहा था। उसे किसी ने नहीं रोका क्योंकि जनरल डायर और उसके साथी तो कत्ले आम का छोटा सा बहाना ढूंढ़ रहे थे।

धीरे–धीरे लोग जलियांवाला बाग में जमा होने लगे। छोटे–छोटे बच्चे जो कि बाग के पास खेल रहे थे, जलियांवाला बाग की सभा में जा बैठे। कोई २० हजार आदमियों से भरी थी वह सभा। बाहर से आए हुए अनेक लोग भी शामिल थे। खुद उस समय पंजाब की सरकार ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि जलियांवाला बाग में जो सभा हुई थी, उसमें बहुत बड़ी संख्या में देहात से आए हुए किसान लोग जमा थे और उनके जमा होने का कारण राजनीतिक न होकर कुछ और था।

जलियांवाला बाग , जहां पर यह सभा हो रही थी, शहर के मध्य में एक खुला हुआ स्थान था। शहर के मकान ही इसकी चारदीवारी बनाये हुए थे। इसका दरवाजा बहुत ही संकीर्ण था, इतना कि एक गाड़ी भी उससे होकर नहीं निकल सकती थी। धीरे-धीरे बाग में बीस हजार से अधिक लोग एकत्रित हो गये, जिनमें पुरुष, स्त्रियां और बच्चे भी थे। इसी समय जनरल डायर ने अपने सैनिकों सहित बाग में प्रवेश किया। जिस समय ये लोग वहां पहुंचे, उस समय हंस राज नाम का एक आदमी भाषण दे रहा था। बाग में घुसते ही जनरल डायर ने गोली चलाने का आदेश दे दिया। जैसा कि हन्टर कमेटी के समक्ष उसने कहा था कि उसने लोगों को तितर-बितर होने की आज्ञा देकर तुरन्त गोली चलाने का हुकम दे दिया। उसने यह भी स्वीकार किया कि तितर-बितर होने का आदेश देने के तीन मिनट के बाद ही उसने गोलियां चलवा दी थी। यह बात तो स्पष्ट है कि २० हजार आदमी दो तीन मिनट में तितर-बितर नहीं हो सकते थे, और वह भी विशेष कर एक बहुत तंग दरवाजे में से होकर। गोली तब तक चलती रही, जब तक कि सारे

कारतूस खत्म नही हो गए। कुल १६०० बार गोली चली। सरकार के स्वयं अपने बयान के अनुसार ४०० आदमी मारे गये और घायलों की संख्या २००० के लगभग थी। गोली हिन्दुस्तानी फौजों से चलवाई गई थी जिनके पीछे गोरे सिपाहियों को लगा दिया गया था। वे सब के सब बाग में ऊंचे स्थान पर खड़े हुए थे। सबसे बड़ी दुखद बात तो यह थी कि गोली चलाने के बाद मृतक और घायलों को सारी रात वहीं पड़ा रहने दिया गया। वहां उन्हें रात भर न तो पानी ही पीने को मिला और न कोई डाक्टरी या अन्य सहायता ही।

जनरल डायर का कहना था— "चूँकि शहर फौज के कब्जे में दे दिया गया था और इस बात का ऐलान कर दिया गया था कि कोई भी सभा करने की इजाजत नहीं दी जाएगी, तो भी लोगों ने उसकी अवहेलना की,, इसलिए वह उन्हें एक सबक सिखा देना चाहता था ताकि वे उसकी खिल्ली न उड़ा सकें।"

आगे चल कर उसने कहा— "मैंने और भी गोली चलाई होती अगर मेरे पास कारतूस होते। मैंने १६०० ही गोली चलवायी क्योंकि मेरे पास कारतूस खत्म हो गए थे।"

यह सच है कि यदि डायर के पास अधिक गोला बारूद होता तो वह २० हजार आदमियों को जिन्दा नहीं छोड़ता। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार उसने भागते हुए बच्चों और महिलाओं पर निर्दयतापूर्वक गोली चलवायी। आश्चर्य की बात यह है कि पंजाब के तत्कालीन ले० गवर्नर सर माइकेल ओडवायर ने जनरल डायर के इस पाशविक हत्या काण्ड को पसन्द किया और उसके पास तार भेजा कि ले० गवर्नर तुम्हारे इस कार्य की सराहना करते हैं।

इसके बाद जो घटना हुई वह और भी भयानक थी। अमृतसर, लाहौर तथा पंजाब के अनेक शहरों में मार्शल ला घोषित कर दिया गया। लोगों को हर प्रकार का पाशविक कष्ट दिया जाने लगा। उन्हें पेट के बल रेंग कर चलने के लिए मजबूर किया गया।

छोटे-छोटे अपराधियों की भी खुले आम कोड़ों की सजा दी जाने लगी। सभी वकील बिना किसी कारण के कांस्टेबल बना दिये गये और उनसे मामूली कुलियों सा काम लिया जाने लगा। बिना किसी अपराध के बुहत से लोग गिरफ्तार किये जाने लगे। उन्हें हवालात में रखा जाने लगा। उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाने लगा और उन्हें भयानक यंत्रणाए दी जाने लगीं।

कोड़ों की सजा केवल घोर अपमानजनक ही नहीं थी बल्कि अत्यन्त निर्दयता और पाशविकता से भी भरी हुई थी। जिन्हें यह सजा दी जाती थी उनके हाथ बांध दिये जाते थे और उन्हें नंगा कर उन पर पूरी ताकत से कोड़े बरसाये जाते थे। लोगों से झुठी गवाहियां दिलाने के लिए उन पर घोर अत्याचार किया जाता था।

लाहौर में कॉलेज के छात्रों को अंग्रेज झण्डे को सलामी देने के लिए तपती हुई धूप में १६ मील दौड़ाया गया। एक निरपराध बारात के लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। दुल्हे को जेल में डाल दिया गया तथा पुरोहित तथा अन्य लोगों पर कोड़े बरसाये गये।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि पंजाब के प्रायः सभी नगरों में विना वजह बहुत लम्बे अरसे तक मार्शल ला जारी रखा गया। मार्शल ला के समय में फौजी अदालतें बैठी थीं। उन्होंने तो फैसला करने में गजब ढा दिया। जिन लोगों ने रालेट ऐक्ट के खिलाफ भाषण दिया था उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और उन्हें न केवल आजीवन काले पानी ही की सजा दी गई वल्कि उनकी सब जायदाद भी जब्त कर ली गई। कई लोगों को अकारण ही फांसी पर लटका दिया गया।

ऐसे समय में मोतीलाल ने साहस का परिचय दिया। यह कहा जाता है कि यदि उन्होंने स्टेट सेक्रेटरी मांटेग्यु के पास तार न भेजा होता और वे हस्तक्षेप नहीं करते तो पता नहीं कितने अभागे लोगों को फांसी हो जाती और कितने लोग काले पानी की सजा पाने के लिए भेज दिये जाते।

जलियांवाला बाग की घटना और मार्शल ला की ज्यादतियों ने

मोतीलाल के हृदय पर गहरी छाप छोड़ी। उन्होंने भरपूर कोशिश की कि अंग्रेजी सरकार के दमन के शिकार लोगों की, यथासाध्य, सहायता की जाए। अपनी वकालत छोड़ कर उन्होंने बिना कोई फीस लिये मार्शल ला के शिकार उन अभागे लोगों की सहायता की, जिनको या तो फांसी की सजा सुना दी गई थी या आजीवन कारावास की। इस बीच अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी ने गांधी जी के नेतृत्व में एक कमेटी की स्थापना की, जो पंजाब में हुए दंगों के बारे में विस्तार से पता लगाये। मोतीलाल भी इस कमिटी के सदस्य थे। कहते हैं कि जब लोगों ने आकर इस कमिटी के सामने बयान दिया तो गांधी जी और मोतीलाल दोनों द्रवित हो उठे। मोतीलाल की दशा और भी खराब थी क्योंकि उन्हें विश्वास था कि वैधानिक तरीकों पर विश्वास करने वाली अंग्रेज सरकार इस तरह का दमन नहीं कर सकती है।

इस कमिटी के सदस्य होने के नाते मोतीलाल गांधीजी के बहुत निकट आ गये और उनके व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित भी हुए। जवाहर लाल तो पहले से ही महात्मा गांधी के भक्त थे। अब पिता मोतीलाल भी उनके भक्त हो गए।
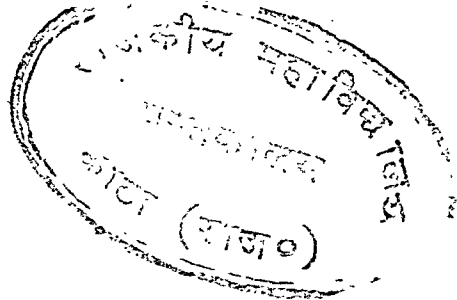
अमृतसर कांग्रेस के अध्यक्ष मोतीलाल

पंजाब काण्ड के बाद अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। मोतीलाल इसके अध्यक्ष चुने गये। २५ दिसम्बर की दोपहर को जब मोतीलाल लाहौर से अमृतसर पहुंचे तो उन्हें ऐसा लगा कि रेलवे स्टेशन भाव-विह्वल लोगों का समुद्र बना हुआ है। लोगों का अपार स्नेह देखकर मोतीलाल विचलित हो गए और उन्होंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि देश को आज़ाद करने के लिए वे अपना बलिदान तक कर देंगे। इस सम्मेलन में राष्ट्रीय स्तर के सभी नेता उपस्थित हुए थे, जिनमें गांधी जी के अलावा लोकमान्य तिलक, एन्नी बेसेन्ट, विपिनचन्द्र पाल, मदनमोहन मालवीय और सी०आर० दास भी थे। इस सम्मेलन में जिन्ना भी शामिल हुए। मोतीलाल ने तीन घण्टे का अध्यक्षीय भाषण दिया और जलियांवाला बाग की दुखद घटना की तीखी आलोचना की।

मोतीलाल ने जलियांवाला बाग और मार्शल ला के अत्याचारों की चर्चा करते हुए कहा कि ये घटनाएं भारतीय इतिहास का अंधकारमय अध्याय है और दुख तो इस बात का है कि यह अध्याय इसी अमृतसर शहर में पिछेल अप्रैल को लिखा गया। उन्होंने आगे कहा कि हम श्रद्धा सहित उन शहीदों की याद में सिर झुकाते हैं जो इसी अमृतसर शहर में और पंजाब की

दूसरी जगहों में अकारण मारे गये या जो जिन्दा भी हैं और उन अत्याचारों को झेल रहे हैं जो कि मृत्यु से बदतर और शर्मनाक हैं। इन शहीदों की याद में किसी भी स्मृति चिन्ह की आवश्यकता नहीं है, चाहे वह संगमरमर का हो या अन्य किसी धातु का। हम यहां जो भाषण दे रहे हैं या जो प्रस्ताव पास कर रहे है, उसे भविष्य भूल जाएगा — शायद इतिहास भी याद नहीं रखेगा। परन्तु भारत मां के इन बहादुर सपूतों ने जो बलिदान दिया उसे भारत मां हमेशा याद रखेगी। उन्होंने कहा कि अत्याचार, अनाचार और भय दिखाने से किसी राष्ट्र का जीवन समाप्त नहीं हो जाता है, बल्कि इससे लोगों में केवल असंतोष बढ़ता है।

मोतीलाल ने कहा कि पिछले विश्व युद्ध के दौरान अंग्रेज सरकार ने भारतवासियों से तन, मन, धन से सहायता करने की अपील की थी। हर भारतवासी ने जी-जान से अंग्रेज सरकार की सहायता की यह सोचकर कि यदि वे लड़ाई में जीत गये तो भारत को आज़ादी प्राप्त होगी। परंतु लड़ाई के शीघ्र बाद अंग्रेज अपनी बात से मुकर गये।

रालेट ऐक्ट की कठोर समालोचना करते हुए उन्होंने कहा कि यह एक काला कानून है जिसमें भारत के किसी नागरिक को बिना मुकदमें के गिरफ्तार कर लिया जा सकता है और किसी भी अवधि तक जेल में डाले रखा जा सकता है। अतः इस काले कानून को जितनी जल्दी समाप्त किया जाए उतना ही अच्छा है।

उन्होंने महात्मा गांधी के इन शब्दों को दोहराया कि समय आ गया है जब हम अंग्रेज सरकार से यह पूछें कि लोगों की भावनाओं का स्वागत होगा या सरकार की मर्जी का। इस ऐक्ट का जारी रखना हमारे आत्म सम्मान और राष्ट्रीय गौरव के लिए कलंक की बात है। परंतु मुझे विश्वास है कि यदि हम संवैधानिक तरीके से अपनी कोशिश जारी रखें तो हमें इस कानून से छुटकारा मिल सकता है। उन्होंने फिर कहा कि कोई भी सरकार चाहे कितनी भी शक्तिशाली या निरंकुश क्यों न हो, उसे सर्वसम्मत जनमत के आगे झुकना ही पड़ता है। यह सोचना गलत है कि सत्य और न्याय शारीरिक बल के आगे झुक जाएगा चाहे वह एक व्यक्ति का बल हो अथवा सर्व प्रभुतासम्पन्न सरकार का।

महात्मा गांधी के 'सत्याग्रह' आंदोलन का समर्थन करते हुए मोतीलाल ने कहा कि भारतीय राजनीति में एक नयी शक्ति का उदय हुआ है जिनमें असीम संभावनाएं हैं। सत्याग्रह का संदेश आज भारत के गांव-गांव में और झोंपड़े-झोंपड़े में पहुंच गया है। सत्याग्रह का अर्थ है सत्य, निर्भीकता और अहिंसा। और हम कहेंगे कि यह हर व्यक्ति का अधिकार है कि वह ऐसे किसी कानून को मानने से इंकार कर दे जिसे उसकी अंतरात्मा कबूल नहीं करती हो।

मोतीलाल ने कहा कि जब तक हम सत्य पर दृढ़ नहीं रहेंगे और अपना भय नहीं छोड़ेंगे, हमें गुलामी से मुक्ति नहीं मिल सकती है। हिंसा पश्चिम का अस्त्र है और हिंसा का सहारा लेकर हम आजादी नहीं प्राप्त कर सकते हैं। और एक क्षण के लिए मान भी लिया कि हमने हिंसा का सहारा लेकर आजादी प्राप्त कर ली, तो यह आजादी नीरस होगी और हम ऐसी आजादी का लाभ नहीं उठा पाएंगे। हम उन्हीं बातों के शिकार बन जाएंगे जिसके खिलाफ आज हम लड़ रहे हैं और हम भी तब अत्याचार का खेल खेलेंगे जैसा कि दूसरे करते हैं।

अमृतसर और पंजाब की घटनाओं का जिक्र करते हुए मोतीलाल ने कहा कि आपको अभी हाल की घटनाओं की याद ताजा होगी। पंजाब में मार्शल ला लगा दिया गया था और बहुत दिनों तक पंजाब शेष दुनिया से कटा हुआ था। सत्य हम लोगों से छिपाया गया था और पंजाब के मामले में सरकार जो कुछ कहती थी हम उसे सच मान बैठे थे। बाहर के लोगों को पंजाब आने की मनाही थी। यहां तक कि प्रसिद्ध पत्रकार सी.एफ. एन्ड्रयूज को भी पंजाब से बाहर निकाल दिया गया था। मार्शल ला जारी होने के कुछ दिनों के अंदर ही कांग्रेस ने एक निष्पक्ष न्याय की मांग की और कुछ दिनों बाद एक उप-समिति बनाई गई और सारे मामलों की जांच करनी चाही। इस उप-समिति ने महीनों मेहनत की है और बहुत से तथ्यों को इकट्ठा किया है जो सरकारी हंटर कमिटी के सामने प्रस्तुत किये जायेंगे।

मोतीलाल ने आगे कहा कि सरकार द्वारा लार्ड हंटर की अध्यक्षता में सारे मामले की जांच के लिए जो कमिटी बनी है वह बड़ी निराशाजनक है।

शुरू में हमने कहा था कि इस कमिटी की जांच के दौरान पंजाब के उन सारे नेताओं को रिहा कर दिया जाए जो जेल में हैं, क्योंकि निष्पक्ष जांच के लिए उनका जेल से बाहर रहना आवश्यक है। सरकार ने हमारी इस मांग को नहीं माना। फिर हमने अपने निवेदन में थोड़ा संशोधन किया और सरकार से कहा कि कम से कम एक-दो नेताओं को ही जेल से रिहा कर दिया जाए जो लार्ड हंटर की कमिटी के सामने गवाही दे सकें। परंतु सरकार ने हमारे इस निवेदन को भी बड़ी निर्दयतापूर्वक नामंजूर कर दिया है। यह कोई बहुत बड़ा निवेदन नहीं है। क्योंकि अपराधियों को भी मुकदमे के दौरान अपनी सफाई देने का पूरा हक रहता है। पंजाबी नेताओं को जानबूझकर दोषी साबित करने का प्रयास किया जा रहा है और कोशिश हो रही है कि ऐसा कुछ दिखाया जाय कि अमृतसर और पंजाब में जो कुछ हुआ उसकी जिम्मेदारी इन्हीं नेताओं पर थी।

एक तरफ तो इन नेताओं के साथ अपराधियों जैसा व्यवहार किया जा रहा है, दूसरी तरफ सरकारी अफसरों को, जो निश्चित रूप से इन कांडों के लिए दोषी हैं, सारी सुविधाएं दी जा रही हैं। यहां तक कि अफसरों को तो यह मंजूरी भी मिली हुई है कि वे अपनी गवाही गुप्त रूप से कमरे के अंदर दें।

इन सब ज्यादतियों को देखते हुए कांग्रेस की उप समिति इस नतीजे पर पहुंची है कि यदि इसे अपना काम सच्चाई से करना है, जिसके लिए लोगों ने इस पर विश्वास किया है और यदि इसे राष्ट्रीय सम्मान और पंजाब के नेताओं की सम्मान की रक्षा करनी है तो यह हंटर कमिटी से सहयोग नहीं कर सकती है क्योंकि हंटर कमिटी में जनता के प्रतिनिधियों के लिए कोई सम्मानजनक स्थान है ही नहीं। परंतु साथ ही मैं जनता को यह विश्वास दिलाता हूं कि आपकी उप-समिति पूरी कोशिश करेगी कि आपको न्याय मिले।

मोतीलाल ने कहा कि जलियांवाला बाग में जो नरसंहार हुआ केवल उसी से जनरल डायर संतुष्ट नहीं हुआ। उसने जुल्म के दूसरे रास्ते भी अपनाये। उदाहरण के लिए सभी भारतीय जो एक खास गली से होकर गुजरते थे उन्हें कीड़े की तरह अपने पेट के बल रेंग कर जाना होता था। यह

उन सभी निर्दोष और शांतिपूर्ण व्यवहार रखने वाले लोगों के साथ होता था जो उधर से गुजरते थे।

मोतीलाल ने पंजाब की दूसरी जगहों में होने वाले अत्याचारों की भी विस्तार से अपने अध्यक्षीय भाषण में चर्चा की।

मोतीलाल को अभी भी ब्रिटिश सरकार की न्यायप्रियता में भरोसा था। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में आगे कहा कि अंग्रेज न्यायप्रियता के लिए मशहूर हैं और अपनी इस बात के लिए वे अपने को गौरवान्वित भी महसूस करते हैं। भारतीय अंग्रेजी प्रजातंत्र के हाथों न्याय मांग रहे हैं। क्या वे भारत में होने वाले इस अत्याचार को बर्दाश्त करेंगे और जो लोग ये अत्याचार कर रहे हैं उनकी तरफदारी करेंगे? इसी बात से ब्रिटिश नीति की जांच हो जाएगी और इसी बात के उत्तर पर यह निर्भर करेगा कि भारतीयों को अपना रास्ता क्या तय करना चाहिए।

मोतीलाल ने कहा कि हमारे मुसलमान भाई हमारे लिए उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने हिन्दू। मैं खिलाफत आंदोलन की तरफ आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ। किसी भी राष्ट्र के लिए अलग खड़ा रहना मुश्किल है जबकि उसका दूसरा भाग तकलीफ में पड़ा हो। इसी कारण जब अंग्रेज सरकार ने शांति का उत्सव मनाने की मांग की तो मुसलमानों के साथ-साथ हिन्दुओं ने भी अपने को इन उत्सवों से अलग रखा। हम कांग्रेस की तरफ से अपने मुसलमान भाइयों की मांगों का पूर्ण समर्थन करते हैं। अब लड़ाई समाप्त हो गयी है और हम केवल मुसलमानों की तरफ से ही नहीं पूरे देशवासियों की तरफ से यह मांग करते हैं कि मुसलमानों के साथ जो वादे किए गए थे उसको ब्रिटिश सरकार पूरा करे।

मोतीलाल ने आगे कहा कि अब हमें स्वदेशी आंदोलन की तरफ आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ। गांधी जी हस्तकरघा/हस्तचरखा के पुराने उद्योग को फिर से जीवित करना चाहते हैं जिससे कि देश स्वावलंबी हो सके। आधुनिक अर्थशास्त्री इस मशीनी युग में इस योजना की सफलता पर संदेह करते हैं परंतु मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है। क्योंकि गांधी जी ने जो

योजना बनायी है उसमें कोई बरबादी नहीं है और यदि यह योजना लोकप्रिय हो जाए तो गांव में रहने वाले करोड़ों लोगों को खेती के अलावा जीविकोपार्जन का एक दूसरा साधन भी मिल सकता है। हमारी कुल जनसंख्या का ७३ प्रतिशत खेती पर निर्भर करता है और कोई भी कृषि प्रधान देश की जनसंख्या एक पूरक उद्योग के बिना जीवित नहीं रह सकती है। यदि हमारी महिलाएं सूत कताई और हस्तकरघा को अपना लें तो बिना किसी बड़े खर्च के हम न केवल अपनी मांग का कपड़ा बना लेंगे बल्कि हमारे किसानों को एक उद्योग-धंधा भी मिल जाएगा।

अंत में उन्होंने कहा कि मेरा आखिरी उद्देश्य क्या है? हम चाहते हैं कि हमें हर तरह से आजादी मिले जिससे हम अपने भाग्य का फैसला कर सकें और एक ऐसे भारत का निर्माण कर सकें जो भारत के लोगों के सपनों जैसा हो। हम भारत में पश्चिम की भौंडी नकल नहीं करना चाहते हैं।

हमें इस बात को याद रखना चाहिए कि पश्चिम का प्रजातंत्र सभी बीमारियों का इलाज नहीं है। इसने अब तक उन समस्याओं का समाधान नहीं किया है जो समस्याएं हमें घेरे हुई हैं। यूरोप में श्रम और पूँजी में लड़ाई हो रही है और मजदूर पूँजीपतियों के खिलाफ सिर उठा रहे हैं। हो सकता है जब हमें आजादी मिले तो हम अपनी संस्थाओं को इस तरह बनायेंगे जिसमें पूर्व और पश्चिम की सभी अच्छी बातें समन्वित हों। इस बीच हमें पश्चिम की बुराइयों से दूर रहना चाहिए। परंतु साथ ही साथ अपने बुरे रीति-रिवाजों को भी अपने से दूर करना चाहिए। हमारा उद्देश्य ऐसा भारत बनाना हो जहां हर व्यक्ति के विकास का पूरा अवसर हो, जहां महिलाएं गुलामी में न रहें, जहां जातपात का भेदभाव समाप्त हो जाए, जहां कोई ऊँची जाति और कोई नीची जाति न हो, जहां शिक्षा सबों को निःशुल्क प्राप्त हो, जहां पूँजीपति और जमींदार गरीब मजदूरों और किसानों पर अत्याचार न करें, जहां मजदूरों को उनके श्रम का पूरा पैसा मिले, जहां गरीबी पूरी तरह से मिट जाए। तभी भारत रहने योग्य देश होगा। यहां खुशी होगी, आशाएं होंगी और जो दुख आज हम देख रहे हैं वह मिट गया होगा। एक नयी सुबह का उदय होगा जो हमारे जीवन में प्रसन्नता लायेगी।

अंत में उन्होंने कहा, "परंतु यह दिन अभी दूर है। हमें बहुत कठिन रास्ते से गुजरना है, जिसमें बाधायें ही बाधायें हैं और अनेक खाइयां बिछी हुई हैं। सत्य और साहस हमारा मार्गदर्शन करेगा और शीघ्र ही हम अपने सपनो के देश में पहुंच जाएंगे।"

मोतीलाल के इस अध्यक्षीय भाषण ने सारे देश की जनता में राष्ट्रीयता की लहर फैला दी और लोग आजादी प्राप्त करने के लिए मर मिटने को तैयार हो गए।

मोतीलाल अपने जीवन के ६०वें वर्ष में प्रवेश कर चुके थे और ऐश-आराम की जिंदगी छोड़ कर गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन में कूद पड़े थे। अन्य बातों के अलावा जिस बात ने उन्हें गांधी जी के आंदोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित किया वह था जवाहर लाल के प्रति उनका प्रेम। जवाहर लाल ने दृढ निश्चय कर लिया था कि वे गांधी जी का अनुसरण करेंगे। मोतीलाल ने जवाहर लाल की इच्छा का आदर किया और खुद गांधी जी के अनुयायी बन गए।

१९२० की गर्मियों में मोतीलाल किसी आवश्यक मुकदमे के सिलसिले में बिहार के आरा शहर में थे। इन्हीं दिनों इलाहाबाद में उनकी पत्नी स्वरूपरानी और बहू कमला नेहरू सख्त बीमार पड़ गई थी। डाक्टरों ने सलाह दी कि पहाड़ों पर जाकर जलवायु परिवर्तन किया जाए। जवाहरलाल अपनी मां, पत्नी और बहनों के साथ मसूरी पहुंचे और सेवाय होटल में ठहरे। उसी होटल में एक अफगान शिष्टमण्डल भी ठहरा हुआ था। उन दिनों अंग्रेजों और अफगानों के बीच झगड़े हो रहे थे। मसूरी के पुलिस सुपरिनटेन्डेन्ट ने जवाहर लाल को सरकार का एक पत्र दिखाया जिसमें उन से यह लिखित वायदा लेने की बात थी कि वे अफगानी प्रतिनिधियों से न तो मिलेंगे और न कोई संबंध रखेंगे और यदि उन्होंने इस आज्ञा की अवहेलना की तो उन्हें तुरंत निर्वासित कर दिया जायेगा। जवाहरलाल नें कहा कि अफगानी प्रतिनिधि मण्डल से उनका कोई संबंध नहीं है परंतु सिद्धांतरूप में वे इस प्रकार का कोई वादा करने के विरूद्ध हैं।

जवाहर लाल ने कोई भी वादा करने से इंकार किया। वे सरकार की

निषेधाज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहते थे और इसी कारण वे इलाहाबाद चले गये। मोतीलाल को जब इस बात का पता चला तो वे बड़े चिंतित हो गए। उन्होंने यह महसूस किया कि जवाहर लाल को परिवार की महिलाओं को बिना किसी देखभाल करने वाले के मसूरी में इस तरह छोड़ कर नहीं आना चाहिए था। दूसरे, उन्हें इस बात का भी डर था कि जवाहर लाल देर या सबेर कहीं सरकारी निषेधाज्ञा का उल्लंघन न कर बैठें और इस प्रकार जेल में न डाल दिए जाएं।

मोतीलाल ने गवर्नर सर हारकोर्ट बटलर को इस बारे में पत्र लिखा और इस तरह सरकारी निषेधाज्ञा की समालोचना की। मोतीलाल के पत्र के परिणामस्वरूप जवाहर लाल को दिया गया निर्वासन दंड बिना शर्त वापस ले लिया गया।

कलकत्ता कांग्रेस में कांग्रेस के प्रभावशाली नेताओं ने, जिन में मदनमोहन मालवीय, सी० आर० दास और लाला लाजपत राय शामिल थे, गांधीजी का विरोध किया। अकेले मोतीलाल ही ऐसे नेता थे जिन्होंने गांधी जी का समर्थन किया।

कलकत्ता कांग्रेस के शीघ्र बाद मोतीलाल ने यू० पी० कौंसिल से त्यागपत्र दे दिया और सार्वजनिक तौर से घोषणा की कि मैं सुधारी हुई विधानसभाओं का चुनाव नहीं लडूंगा। उन्होंने वकालत छोड़ दी और लड़की कृष्णा को स्कूल से हटा दिया। अपने घोड़े, गाड़ियां, कुत्ते तथा बहुमूल्य बरतन सभी कुछ उन्होंने बेच दिये। रातोंरात आनंद भवन में जिंदगी का स्वरूप बदल गया। नौकरों की बहुत कमी कर दी गई। विदेशी वस्त्रों को न केवल त्यागा गया बल्कि उनकी होली भी जलाई गई। इस तरह मोतीलाल पूरे मन से स्वदेशी आंदोलन में मिल गए।

असहयोग आन्दोलन और मोतीलाल

कलकत्ता और नागपुर कांग्रेस के बाद महात्मा गांधी के प्रभाव में आशातीत वृद्धि हुई। भारतीय राष्ट्र के जीवन में नवचेतना आ गई। जवाहरलाल नेहरू ने उस समय की परिस्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि गांधी जी ने देश को नवजीवन प्रदान किया। देश में नवीन आशा और नवीन उत्साह की वायु जोर से बहने लगी। लोग स्वराज के सुख-स्वप्न को देखने लगे। गांधी जी ने जो आदर्श स्वदेश के सामने रखा उससे यह आशा होने लगी कि इनके द्वारा भारत के उद्धार के साथ-साथ मानव जाति को भी नवीन प्रकाश का संदेश मिलेगा। निरस्त्र भारत के लिये तो उनका अहिंसात्मक संग्राम एक अमोघ अस्त्र था।

हिन्दु और मुसलमानों में अनुपम एकता के प्रदर्शन हुए। हजारों की संख्या में राष्ट्रीय स्कूल खुले। जगह-जगह पंचायतें स्थापित हुईं। कांग्रेस के सदस्यों की संख्या ५० लाख बढ़ गई। राष्ट्रीय संग्राम चलाने के लिए गांधी जी ने 'तिलक स्वराज्य फंड' स्थापित किया, जिसके लिए उन्होंने एक करोड़ रुपये की अपील की और देश की जनता ने मुक्त हस्त से रुपया दिया और

एक करोड़ के बदले एक करोड़ पन्द्रह लाख रुपया इकट्ठा हो गया।

१९२१ में देश में जैसी जागृति हुई वह भारत के इतिहास में एक अद्भुत घटना थी। लोग एक वर्ष में स्वराज्य मिलने की अभिलाषा से उन्मत्त हो गये। ब्रिटिश माल का बहिष्कार जोर-शोर से होने लगा। विदेशी कपड़ों की होली जलायी जाने लगी। बम्बई में समुद्र के किनारे विदेशी कपड़ों की जो महान होली हुई थी, वह बम्बई के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। देश के कई भागों में इस तरह की होलियां हुईं। कुछ स्थानों पर जनता और पुलिस में मुठभेड़ हुईं और पुलिस ने निरस्त्र जनता पर गोलियां चलायीं।

८ जुलाई को करांची में खिलाफत कमिटी का अधिवेशन हुआ जिसमें मुसलमानों ने अपने खिलाफत सम्बन्धी दावे पेश किये और यह प्रस्ताव पास किया कि कोई मुसलमान अंग्रेजों की फौज में भर्ती न हो और न वह फौज की भर्ती ही में किसी प्रकार की सहायता दे। इस अधिवेशन में बहुत गर्मागर्म भाषण हुए और सरकार को यहां तक धमकी दी गयी कि अगर उसने तुर्की के प्रति न्याय न किया तो भारतवर्ष अंग्रेजों से सम्बन्ध तोड़ कर अपने आपको एक स्वतंत्र प्रजातंत्र घोषित कर देगा। इसके कुछ अर्से बाद २८ जुलाई को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक हुई और उसमें प्रिंस आफ वेल्स की भेंट का बहिष्कार करने का निश्चय किया गया। इस समय महात्मा गांधी ने अपने 'नवजीवन' में यह साफ तौर से प्रकट किया कि भारतवर्ष का प्रिंस आफ वेल्स से व्यक्तिगत रूप से कोई बैर नहीं है। इस बहिष्कार से वे उस राज्य-पद्धति का विरोध करना चाहते हैं जिसने भारतवर्ष को इस हीनावस्था में पहुंचा दिया है, और जिसने भारतवर्ष का बुरी तरह शोषण किया है।

देश के उत्तेजनापूर्ण वातावरण में अहमदाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में जनता का जैसा उत्साह देखा गया वह कांग्रेस के इतिहास में अभूतपूर्व था। जनता के जोश का समुद्र मानो उमड़ रहा था। लोग स्वराज्य की भावना से ओतप्रोत थे। देशबन्धु चितरंजन दास इस अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। परंतु उनके जेल चले जाने से हकीम अजमल खां ने अध्यक्ष का पद ग्रहण किया। इस अधिवेशन में सारे

देश को आह्वान किया गया कि वे व्यक्तिगत और सामूहिक सत्याग्रह के लिए एकदम तैयार रहें।

असहयोग आंदोलन में मुख्य रूप से भाग लेने के कारण दिसम्बर १९२१ में मोतीलाल और जवाहर लाल को कैद कर लिया गया। जेल जाते समय मोतीलाल ने देशवासियों के नाम संदेश दिया कि यह मेरी खुशकिस्मती है कि आज मैं मातृभूमि की सेवा में अपने इकलौते लड़के के साथ जेल जा रहा हूँ। जैसे ही पुलिस की गाड़ी पिता-पुत्र को लेकर आनंद भवन से निकली, अपार जन समूह ने मोतीलाल और जवाहर लाल की जय-जय कार के नारे लगाये।

पिता और पुत्र दोनों को लखनऊ जेल में रखा गया। जवाहर लाल के लिए जेल का यह पहला अनुभव था। उन्होंने अपने को कठोर शारीरिक व मानसिक परिश्रम में लगा दिया। वे प्रतिदिन नियमपूर्वक जल्दी उठते, झाड़ू देते, सफाई करते और अपने पिता के कपड़े धोते थे। चर्खा कातते थे और शाम को कैदियों के लिए पाठशाला का भी आयोजन उन्होंने किया था। वे अपने पिता की जरूरतों को समझते थे और उन्होंने भरसक प्रयास किया कि उन्हें किसी बात की तकलीफ न हो।

चौरी चौरा काण्ड

१९२२ के जनवरी में असंख्य राजनीतिक कैदी लखनऊ जेल पहुंचे और असहयोग आंदोलन अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। लखनऊ के समान ही अन्य स्थानों के जेल घर भी स्वतंत्रता संग्रामियों से भर गये। स्वतंत्रता की भावना ने अमीरों के महल से गरीबों की झोपड़ी तक अपना पूरा आधिपत्य जमा लिया। सन् १९२२ की पहली फरवरी को गांधी जी ने तत्कालीन वायसराय लार्ड रीडिंग को यह चुनौती भेजी कि अगर सरकार ७ दिन के अंदर-अंदर अपना हृदय परिवर्तन नहीं करती है तो वे बम्बई प्रेसीडेन्सी के बारडोली नामक स्थान में सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करेंगे। बारडोली के साथ-साथ बंगाल, संुयक्त प्रांत और आंध्र प्रदेश में भी इस तरह के आंदोलन की तैयारी शुरू हुई। महात्मा गांधी की इस चुनौती से सारे देश में एक प्रकार की अपूर्व उत्तेजना छा गई थी। लोग उत्साह से उस क्षण का इंतजार करने लगे जब यह महान आंदोलन शुरू किया जाता।

जेल में जब मोतीलाल और जवाहर लाल ने गांधी जी के इस जन आंदोलन का आह्वान सुना तो खुशी से फूले नहीं समाये। परंतु इसी बीच एक अप्रत्याशित घटना हुई जिसने देश के लोगों के जोश को बुरी तरह झकझोर दिया।

४ फरवरी १९२२ को संयुक्त प्रांत के चौरी चौरा गांव में उत्तेजनावश होकर लोगों की भीड़ ने पुलिस थाने में आग लगा दी जिसके कारण २१ कांस्टेवल और एक थानेदार की मौत हो गई। जव इस घटना का समाचार महात्मा गांधी को पहुंचा तव उनके कोमल हदय को गहरा धक्का लगा। उन्होंने तुरंत कांग्रेस कार्यसमिति की वारडोली में वैठक वुलायी और इस घटना का उल्लेख करते हुए उक्त समिति से जोरदार शव्दों में अनुरोध किया कि वे अनिश्चित समय के लिए सारे देश में सत्याग्रह संग्राम को वन्द कर दे और कांग्रेसजन रचनात्मक कार्य में जुट जाएं।

राष्ट्र के हृदय पर इस आदेश का असर वज्राघात सा हुआ। राष्ट्र की आत्मा में स्वराज्य की प्राप्ति के लिए जो अद्भुत विकलता उत्पन्न हो रही थी वह अचानक ठंडी पड़ गयी। पूरे देश में घोर निराशा का साम्राज्य छा गया। लोगों के मन में गांधी जी के प्रति वहुत आदर था फिर भी उनका यह कार्य उन्हें पसंद नहीं आया। लखनऊ जेल में मोतीलाल और जवाहर लाल ने भी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की।

इस घटना की चर्चा करते हुए जवाहर लाल ने लिखा है कि चौरी चौरा दुर्घटना के वाद जिस प्रकार अकस्मात रूप से आन्दोलन स्थगित कर दिया गया उसके प्रति मैं समझता हूँ कि गांधी जी को छोड़कर प्रायः सभी प्रमुख कांग्रेसी नेताओं ने क्रोध का भाव प्रकाशित किया। मेरे पिता मोतीलाल, जो उस समय जेल में थे, इससे वहुत क्रोधित हुए। युवकों का तो और भी क्रोधित होना स्वाभाविक था। हमारी वढ़ती हुई आशाएं मटियामेट हो गयीं। हमें जो सवसे अधिक कष्ट हुआ वह उन कारणों से हुआ जो इसके स्थगित करने के पक्ष में दिये गये थे। चौरी चौरा अवश्य ही एक शोकजनक घटना थी और सत्याग्रह की भावना के विल्कुल विरूद्ध थी। पर क्या एक दूरवर्ती गांव में एक उत्तेजित किसानों की भीड़ का कोई कार्य हमारे राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का इस प्रकार अन्त कर सकता है, चाहे फिर वह थोड़े ही समय के लिये क्यों न हो। यदि इस प्रकार के यत्र-तत्र हिंसात्मक कार्य के परिणामस्वरूप इस प्रकार की कार्यवाई अनिवार्य हो तो निश्चित रूप से यह समझना होगा कि हिंसात्मक असहयोग के तत्वज्ञान और कला में कहीं कुछ कमी थी।

जवाहर लाल ने एक लम्वा पत्र लिखकर अपनी निराशा गांधी जी को वतायी।

जवाव में गांधी जी ने लिखा कि वे पिता और पुत्र की वेदना का अच्छी तरह अनुभव करते हैं, परन्तु वस्तु स्थिति यह थी कि चौरी चौरा घटना से पहले गांधी जी के पास कलकत्ता, इलाहाबाद और पंजाब से हिंदुओं तथा मुसलमानों दोनों के पत्र आते रहे थे, जिसमें यह बताया गया था कि सरकार की दमनकारी नीति तो जारी है हीं लेकिन 'हम लोग' भी उग्र, असंयत और खूंखार होते जा रहे हैं और उन पर किसी तरह काबू पाना असंभव दिखाई दे रहा है। गांधी जी ने यह भी लिखा कि यदि आंदोलन पर रोक नहीं लगाई जाती तो सब लोग ऐसे संघर्ष में पड़ जाते जो अहिंसक न होकर घोर हिंसापूर्ण बन गया होता।

गांधी जी की गिरफ्तारी और स्वराज पार्टी की स्थापना

चौरी चौरा काण्ड के कारण सत्याग्रह आंदोलन स्थगित किया गया, जिससे सारे देश में घोर निराशा छा गयी। तत्कालीन वायसराय लार्ड रीडिंग ने इसे गांधी जी को गिरफ्तार करने के लिए अनुकूल समय समझा। लार्ड रीडिंग एक चतुर राजनीतिज्ञ थे। वे इंगलैन्ड के चीफ जस्टिस भी रह चुके थे। राजनीति के दावपेंच को अच्छी तरह समझते थे। अहमदाबाद कांग्रेस से ही वे इस फिराक में थे कि गांधी जी को किसी तरह गिरफ्तार किया जाए। परंतु उस समय गांधी जी का प्रभाव वड़ी तेजी से वढ़ रहा था और देश के कोने-कोने में उनकी जयजयकार हो रही थी। इस समय उनको गिरफ्तार करना वुद्धिमत्ता का काम नहीं होता। शायद ऐसा करने से देश में भंयकर आग लग जाती। परंतु चौरी चौरा काण्ड के वाद जव राष्ट्र का जोश ठंड़ा पड़ गया तो लार्ड रीडिंग ने १० मार्च १९२२ को महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया और उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया।

यह ऐतिहासिक मुकदमा १८ मार्च को अहमदावाद में आरंभ हुआ। ज्योंही अभियोग पढ़कर सुनाया गया, गांधी जी ने खड़े होकर उसे स्वीकार

कर लिया। उन्होंने अपना लिखित बयान दिया। लेकिन इसके पढ़ने से पहले भूमिका के रूप में उन्होंने कुछ बातें कहीं। उन्होंने कहा कि यंग इंडिया के साथ सम्बन्ध होने के बहुत पहले से मैं राजद्रोह का प्रचार करता आ रहा हूं। मद्रास, बम्बई और चौरी चौरा में जो कुछ हुआ उसकी सारी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ। मैं जानता हूं कि मैं अग्नि के साथ खेल रहा हूं और यदि मुझे छोड़ दिया जाय तो मैंने जो कुछ किया है फिर वही करूंगा। यदि मैं ऐसा नहीं करूं तो अपने फर्ज को अदा नहीं करूंगा। वह तो मेरे लिये धर्म सा हो गया है। मुझे दोनों में से एक को चुनना है। या तो मुझे एक ऐसे राज्य की सत्ता को मानना पड़ेगा जिसने मेरे विश्वास के अनुसार मेरे देश को कभी न पूरी होने वाली क्षति पहुंचाई है, या फिर मुझे उस समय अपने देशवासियों के क्रोधोन्माद के खतरे का सामना करना पड़ेगा जब वे मेरे मुंह से सच्ची बात जान जाएंगे।

मैं जानता हूं कि कभी-कभी मेरे देशवासियों ने पागलपन से काम लिया है। इस पर मुझे बड़ा दुख है और यहां जो मैं खड़ा हूँ, सो कोई मामूली सी सजा सुनने के लिए नहीं बल्कि कड़ी से कड़ी सजा पाने के लिए। मैं दया की प्रार्थना नहीं करता, न मैं किसी तरह का बहाना ही पेश करने को तैयार हूँ। मैं तो एक ऐसे काम के लिए जो कानून की नजर में जान बूझ कर किया गया अपराध है, पर जो मेरी दृष्टि से एक नागरिक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, बड़ी से बड़ी सजा चाहता हूँ। और उसके आगे सिर झुकाने को तैयार हूं। जज महोदय। आपके पास केवल दो ही रास्ते हैं – या तो आप अपने पद को छोड़ दें, या यदि आप समझते हैं कि जिस शासन-व्यवस्था और जिस कानून के व्यवहार में आप सहायता दे रहे हैं वह देश के लिये मंगलदायी है, तो मुझे बड़े से बड़ा दंड दें। मुझे यह आशा नहीं है कि आप अपना मत परिवर्तन कर सकेंगे। पर मेरा बयान समाप्त होते-होते आपको कुछ आभास अवश्य हो जायेगा कि मेरे हृदय में ऐसी कौन सी ज्वाला धधक रही है जिसने मुझे इस खतरनाक काम को करने के लिए तैयार किया है।

इसके बाद गांधी जी ने अपना लिखित बयान पढ़ा जिसमें उन्होंने विस्तार से इन कारणों को दोहराया जिनकी वजह से वे राजभक्त से राजद्रोही हुए।

अंग्रेज जज ने अपना फैसला सुनाते हुए कहा – "मिस्टर गांधी, आपने अभियोग की धाराओं को स्वीकार करते हुए मेरा कार्य अपेक्षाकृत सरल कर दिया है। पर फिर भी एक सबसे बड़ी कठिनाई है और वह है आपके उपयुक्त दण्ड ढूंढ़ कर आपको देना। भारत में किसी अन्य जज को इतनी बड़ी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा होगा...। यह भुलाया नहीं जा सकता कि अपने देश के करोड़ों निवासियों के हृदय में आपका स्थान है। वे आपको सच्चे देशभक्त और महान नेता की दृष्टि से देखते हैं। वे भी जो आपसे राजनीति में मतभेद रखते हैं, आपके आदर्शों और ऋषि जीवन का लोहा मानते हैं। पर यहां आपको कानून के निर्धारित नियमों के अनुकूल देखना मेरा कर्तव्य है....।

मैं सोचता हूँ कि आप अपने को तिलक की श्रेणी में रखा जाना अनुचित तो नहीं समझेंगे। पर यदि किसी परिस्थिति ने सरकार को उससे पहले ही आपको मुक्त कर देना संभव किया, तो मुझ से अधिक और कोई व्यक्ति प्रसन्न नहीं होगा।"

इस प्रकार गांधी जी को संबोधन कर उन्होंने उन्हें ६ वर्ष की सजा सुनाई। इस पर गांधी जी ने महसूस किया कि मेरे लिये यह परम सौभाग्य की बात है कि सरकार मुझे ऐसा दंड देकर तिलक का स्थान दे रही है। पर यह दंड भी मुझे हल्का मालूम होता है। मैं इससे भी बड़े दंड की आशा करता था।

गांधी जी के जेल जाने के बाद मोतीलाल ने यह महसूस किया कि देश को गांधी जी के नेतृत्व की नितांत आवश्यकता है। अतः जेल से छूटते ही जून में उन्होंने इलाहाबाद में एक महती सभा में भाषण दिया और उसमें गांधी जी द्वारा मोर्चा बदल देने की बात का समर्थन किया। चौरी चौरा की घटना के बाद सविनय अवज्ञा का आंदोलन छोड़ा नहीं गया बल्कि स्थगित कर दिया गया।

जेल से निकलने के बाद मोतीलाल ने सी.आर. दास के साथ मिल कर स्वराज पार्टी की स्थापना की और लोगों को बताया कि यह कांग्रेस का अविभाज्य अंग है। स्वराज पार्टी ने असहयोग आंदोलन की पुष्टि की और

यह प्रस्ताव किया कि कौंसिल में प्रवेश के द्वारा दुश्मन के कैम्प में घुस कर उसे वहीं ललकारा जाए।

चुनाव की तैयारी के लिए स्वराज पार्टी के नेताओं को बहुत कम समय मिला। मोतीलाल ने कठोर परिश्रम किया और सड़क और रेल द्वारा लगातार यात्रा की। परिणाम यह हुआ कि स्वराज पार्टी को चुनाव में अच्छी सफलता मिली। केन्द्रीय विधानसभा में उसे १०१ निर्वाचित स्थानों में से ४२ स्थान मिले। मध्य प्रांत की कौंसिल में उसे बहुमत प्राप्त हुआ। बंगाल में वह सबसे बड़ी पार्टी बनी। यू.पी. और असम में वह दूसरी बड़ी पार्टी बन कर सामने आई।

स्वराज पार्टी के नेताओं ने यह फैसला किया कि केन्द्रीय विधानसभा में मोतीलाल पार्टी का नेतृत्व करेंगे और बंगाल में सी.आर. दास।

विरोधी दल के नेता मोतीलाल

मोतीलाल के संघर्ष का क्षेत्र अब विधानसभा बन गया। यह ब्रिटिश हाउस आफ कामन्स या आज की लोकसभा के समान प्रभुता सम्पन्न संस्थान तो नहीं था परन्तु अनेक मामलों में यह एक काफी प्रभावशाली संस्थान था। इसके अधिकांश सदस्य निर्वाचित थे परन्तु यह कार्यकारिणी को नियंत्रित नहीं कर सकती थी, हटाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। अंग्रेज सरकार की जिम्मेदारी विधानसभा के प्रति न होकर लंदन स्थित सरकार के प्रति थी। सरकारी पक्ष की तुलना में विरोधी पक्ष भी काफी तगड़ा था जिसमें ४० स्वराज पार्टी के सदस्य थे और लगभग उतनी ही संख्या में सरकारी अधिकारी, गैर-सरकारी लोग और यूरोपीय सदस्य मौजूद थे। इन दो परस्पर विरोधी दलों के बीच लगभग ५० ऐसे सदस्य थे जिन्हें दोनों ही पक्ष अपनी-अपनी तरफ मिलाने की कोशिश करते रहे।

सन् १९२४ के शुरू में मोतीलाल ने जिन्ना, मदनमोहन मालवीय का सहयोग प्राप्त कर लिया और इस तरह उन्होंने करीब ३० नरम दल के और मुसलमान सदस्यों की मदद हासिल कर ली। इस का फल यह हुआ कि जो मिलीजुली राष्ट्रीय पार्टी बनी उसके पास शुरू के अधिवेशन में सरकार की तुलना में अधिक मत हो गए। इस विधानसभा में उस समय के अनेक नामी

नेता थे। उदाहरण के लिए विपिनचन्द्र पाल, जिनका नाम बंग-भंग आन्दोलन में जन-जन की जुबान पर आ गया था। अन्य प्रसिद्ध लोगों में से थे सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास जो औद्योगिक और व्यावसायिक मामलों के विशेषज्ञ थे। सर पी. एच. शिवस्वामी अय्यर सैनिक मामलों के विशेषज्ञ थे। एन.एस. जोशी मजदूरों की समस्याओं में दिलचस्पी लेते थे। इसी तरह दीवान चमनलाल और टी० सी० गोस्वामी स्वराज पार्टी के अग्रगण्य नेता थे। विधानसभा के अध्यक्ष सर फ्रैडरिक व्हाइट अपनी निष्पक्षता के लिए विख्यात थे। लेकिन शीघ्र ही उनके स्थान को सर अलैक्जैन्डर मुडीमैन ने ग्रहण कर लिया, जो स्वभाव से अत्यंत ही विनम्र और हास्यप्रिय थे। उनके स्वभाव के लचीलेपन के कारण विधानसभा में कटुता मिनटों में मिट जाती थी।

विधानसभा के एक अत्यन्त ही प्रभावशाली सदस्य थे मुहम्मद अली जिन्ना। जिन्ना पहले कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं में से थे लेकिन जब कांग्रेस की बागडोर गांधी जी के हाथ में चली गई तो जिन्ना ने कांग्रेस छोड़ दी। बाद में जिन्ना पाकिस्तान के निर्माता बने। स्वराज पार्टी के नेताओं ने प्रयास किया कि जिन्ना उनकी पार्टी में शामिल हो जाएं। परन्तु जिन्ना अंत तक टाल-मटोल ही करते रहे। लोगों का कहना था कि जिन्ना में एक अजीब तरह की अकड़ थी। जो भी उनके समीप जाता उससे वे बहुत अकड़ कर बात करते और नफरत भरा रवैया अपनाते। जिन्ना के घमंड को देखकर लोगों को आश्चर्य होता था। परन्तु फिर भी लोग चुप लगा देते थे क्योंकि मुसलमानों के एक बहुत बड़े वर्ग का समर्थन उन्हें प्राप्त था। इस सिलसिले में एक दिलचस्प बात यह है कि जिन्ना की मोतीलाल से बहुत पटती थी। मोतीलाल के सामने वे अकड़ नहीं पाते थे। शायद इसका कारण यह भी रहा हो कि जिन्ना को इस बात का डर हो कि नकली अकड़ दिखाने से मोतीलाल खुद भी अकड़ सकते हैं और ऐसे में जिन्ना का अपमान ही होगा।

उस समय के समाचारपत्रों को देखने से यह प्रतीत होता है कि विधानसभा में सबसे आकर्षक व्यक्तित्व मोतीलाल का ही था। जब भी वे सदन में आते दर्शक उत्सुकता से उनकी राजसी आकृति को देखते रहते। विधानसभा में विरोधी दल के नेता की भूमिका उन्होंने बड़े ठाट से निभाई। फलस्वरूप सारे सदस्यों के वे प्रशंसा के पात्र रहे।

विधानसभा में भी मोतीलाल ने उसी तरह घोर परिश्रम किया जिस तरह वकालत के पेशे में किया था। यहां एक बात महत्वपूर्ण है कि अब तक मोतीलाल अपने को जनता का प्रतिनिधि मानने लगे थे। इसी कारण जहां जिन्ना शानदार 'मेडेन्स होटल' में ठहरे थे, वहां मोतीलाल साधारण से वेस्टर्न कोर्ट में रहते थे जहां उनकी पार्टी के अधिकांश सदस्य थे। मोतीलाल की पकड़ स्वराज़ पार्टी पर पूरी थी और अपने कठोर अनुशासन से उन्होंने उसे सुनियंत्रित रखा।

विरोधी दल के नेता के रूप में मोतीलाल के कार्य की सबसे अधिक प्रशंसा सर जार्ज रेनी ने की जो वायसराय की परिषद् के सदस्य थे। उन्होंने लिखा है — मोतीलाल का व्यक्तित्व ऐसा था कि चाहे कोई व्यक्ति कितना ही आंखें बन्द करके चलने वाला क्यों न हो, उनसे तुरन्त प्रभावित हो जाता था। वकील के रूप में, प्रसिद्ध वक्ता के रूप में और राजनीतिक नेता के रूप में अग्रणी उस व्यक्ति के लिए, वह जहां कहीं भी होता था, चाहे विधानसभा के भीतर या बाहर, सबसे पहली जगह मिलना अनिवार्य था। उनका दिमाग इतना तेज था, बहस में वे इतने कुशल थे, दावपेंच में वे इतने पक्के थे और अपने उद्देश्य के प्रति इतने निष्ठावान थे कि प्रत्येक वाद-विवाद में बहुत ही कठिन साबित होते थे।

फरवरी १९२४ में एक गैर स्वराजी सदस्य दीवान बहादुर रंगाचार्यार ने एक प्रस्ताव रखा जिसके अंतर्गत यह मांग की गई कि एक शाही कमीशन को नियुक्त किया जाए ताकि भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत उपनिवेश का दर्जा हासिल हो जाए। मोतीलाल ने एक संशोधन प्रस्तुत किया, जिसमें यह सुझाव दिया गया कि नए संविधान का निर्माण एक गोलमेज कांफ्रेंस द्वारा किया जाए और उसकी मंजूरी भारत में नए सिरे से निर्वाचित एक विधानसभा द्वारा की जाए। बाद में उस संविधान को ब्रिटिश संसद की स्टैट्यूट में शामिल किया जाए।

ब्रिटिश सरकार की ओर से सर मैल्कम हेली ने तर्क दिया कि भारतीय राजे-महाराजे, यूरोपीय वाणिज्य-व्यवसाय, भारत-मन्त्री के अधीन सेवाएं और अल्पसंख्यक वर्ग के कारण हिन्दुस्तान को आजादी नहीं दी जा सकती है। हेली के तर्क से क्रुद्ध होकर मोतीलाल ने कहा कि हम असहयोगी होते हुए भी यहां इसलिए आए हैं कि आपको अपना सहयोग दें बशर्ते कि आप हमारा

सहयोग लेना चाहते हों। यदि आप हमारा सहयोग लेना चाहते हों तो हम आपके साथी हैं, वरना हम मर्दों की तरह अपने अधिकारों की मांग करेंगे और हमेशा असहयोगी बने रहेंगे।

मोतीलाल ने जो सुझाव दिया उसके पक्ष में ७६ सदस्यों ने और विपक्ष में ४८ सदस्यो ने मत दिया। इस तरह अंग्रेज सरकार को स्वराज पार्टी के हाथों करारी हार खानी पड़ी। यहां तक उल्लेखनीय है कि कुछ मुसलमानों और नरम दल के सदस्यों ने भी मोतीलाल का साथ दिया। इनका नेतृत्व क्रमशः जिन्ना और मदनमोहन मालवीय कर रहे थे।

मोतीलाल के कुशल नेतृत्व का ही परिणाम था कि पहले चार बजट अनुदान पूरे के पूरे नामंजूर कर दिए गए, वित्तीय बिल पेश किये जाने पर पास नहीं हो सका और पुनर्विचार के लिए वायसराय ने जब उसे वापस कर दिया तो अगले दिन भी वह पास न हो पाया। इसी तरह कई महत्वपूर्ण विषयों पर स्वराज पार्टी के हाथ सरकार को शिकस्त खानी पड़ी।

इस तरह विधानसभा में और विधानसभा के बाहर मोतीलाल जनमानस पर पूरी तरफ छा गए। परंतु दुर्भाग्य यह था कि अंग्रेज वायसराय को इतना अधिक अधिकार प्राप्त था कि वह कलम के एक झटके से विधानसभा द्वारा पारित सभी प्रस्तावों को नामंजूर कर सकता था और विधानसभा द्वारा नामंजूर किए गए सभी प्रस्तावों को प्रमाणित कर सकता था।

जिस समय स्वराज पार्टी और अंग्रेज सरकार में संघर्ष चरमसीमा पर था, एक महत्वपूर्ण घटना हुई। यरवदा जेल में गांधी जी की पथरी का आपरेशन हुआ और स्वास्थ्य संबंधी कारणों से उन्हें तुरंत रिहा कर दिया गया। गांधी जी स्वराज पार्टी के नेताओं की गतिविधि से बहुत प्रसन्न नहीं थे। परंतु कांग्रेस की एकता को कायम रखने के उद्देश्य से उन्होंने स्वराजियों का साथ देना ही उचित समझा।

इस बीच महात्मा गांधी फिर गंभीर रूप से बीमार पड़ गए। उनके स्वास्थ्य को लेकर मोतीलाल बहुत चिंतित हो गए और उन्होंने सलाह दी कि वे एक सप्ताह इलाहाबाद से करीब ५ मील दूर गंगा के किनारे निर्मित उनके

एक दोस्त के उद्यान भवन में रह कर स्वास्थ्य लाभ करें। देश की बिगड़ती हुई राजनीतिक स्थिति को देखते हुए और लोगों की तकलीफों को ध्यान कर गांधी जी के लिए छुट्टी लेना संभव नहीं था। इस बीच देश में सांप्रदायिक कटुता और रक्तपात बढ़ता गया जिसे रोकने के लिए गांधी जी ने २१ दिन का उपवास किया। इस उपवास का गांधी जी के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। सरकार ने स्वराज पार्टी की गतिविधियों का दमन करने के उद्देश्य से उसके कार्यालयों पर धावा बोल दिया और कई प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया जिनमें सी.आर. दास के एक सहयोगी सुभाष बोस भी थे। स्वराजियों पर यह आरोप लगाया गया कि वे अराजकतावादी अपराधियों को सहयोग व बढ़ावा दे रहे हैं। गांधी जी ने अंग्रेज सरकार को चुनौती दी कि वे न्यायालय में इस आरोप को साबित करें।

राष्ट्रीय आंदोलन की गति को तेज करने के विचार से गांधी जी ने मोतीलाल और सी.आर. दास से एक समझौता किया जिसके अनुसार असहयोग को औपचारिक रूप से कुछ दिनों के लिए स्थगित करने का निश्चय किया गया और यह भी निश्चय हुआ कि स्वराज पार्टी कांग्रेस का अभिन्न अंग बन जाएगी तथा वह खुद अपने कोष का निर्माण करेगी तथा उसका संचालन करेगी।

गांधी जी ने स्वराजियों के प्रति एक और उदारता का रुख अपनाया तथा उन्हें १९२५ के वर्ष के लिए महासभा में पदों का बहुमत दे दिया। परंतु कुछ महीनों के बाद एक वज्रपात हुआ और स्वराज पार्टी का भविष्य अंधकारमय हो गया। बहुत अधिक संघर्ष करने के कारण दास का स्वास्थ्य तेजी से बिगड़ता गया और जून १९२५ में उनकी मृत्यु हो गई। दास की मृत्यु ने मोतीलाल को बुरी तरह झकझोर दिया। मोतीलाल के घाव पर गांधी जी ने मरहम लगाया और स्वराजियों को और भी अधिक छूटें देकर कांग्रेस की दरार को अंतिम रूप से भर दिया। उन्होंने खुले आम इस बात की घोषणा की कि स्वराज पार्टी कांग्रेस का अभिन्न अंग है।

जेल जाने आने के सिलसिले में जवाहरलाल अपनी पत्नी कमला को भूल से गए थे। कमला ने खुद बहुत संघर्ष किया। इस बीच उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया। नवम्बर १९२४ में उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया जिसकी कुछ ही दिनों बाद मृत्यु हो गई। कुछ महीनों बाद डाक्टरों ने बताया कि उन्हें

क्षयरोग हो गया है। उन दिनों यह एक भयानक और जान लेवा बीमारी समझी जाती थी। तय यह हुआ कि कमला को इलाज के लिए जेनेवा ले जाया जाए। गांधी जी की भी यही सलाह थी।

मार्च १९२६ में जवाहर लाल अपनी पत्नी कमला और पुत्री इंदिरा के साथ बम्बई से जहाज में रवाना हुए। पहले तो वे यह सोचकर विदेश जा रहे थे कि वह भारत से सिर्फ ६ महीने बाहर रहेंगे। परंतु परिस्थितियां ऐसी हुईं कि वे दिसम्बर १९२७ के पहले भारत नहीं लौट सके। अपने यूरोपीय प्रवास के दौरान जवाहर लाल ने मोतीलाल को अनेक पत्र लिखे और यह बताया कि दुनिया में ऐसी जबर्दस्त ताकतें काम करने लगी हैं जो हिन्दुस्तान पर अपना असर छोड़े बिना नहीं रह सकती। मोतीलाल जवाहर लाल की बातों से पूर्णतः सहमत थे।

इस बीच कानपुर कांग्रेस अधिवेशन में मोतीलाल ने एक प्रस्ताव पास कराया जिसमें स्वराजियों को यह आदेश दिया गया कि यदि सरकार उत्तरदायी स्वशासन की राष्ट्रीय मांग को स्वीकार न करे तो वे अपने-अपने पद से इस्तीफा दे दें। इस निर्णय के अनुसार स्वराज पार्टी ८ मार्च १९२६ को विधानसभा से वाक आउट कर गई। मोतीलाल ने एक प्रभावशाली भाषण इस मौके पर दिया और कहा कि इस विधानसभा और देश की अन्य विधानसभाओं में और अधिक रहना अब बेमानी है। हम आज बाहर जा रहे हैं इसलिए नहीं कि हम इस ताकतवर साम्राज्य को उखाड़ फेकेंगे, हम जानते हैं कि यदि हम चाहें भी तो ऐसा नहीं कर सकते। हम आज विनम्रता के साथ जाते हैं यह निवेदन करते हुए कि सदन में अपने उद्देश्यों को पूरा करने में हम पूर्णतः कामयाब रहे।

इस बीच देश में साम्प्रदायिक तनाव बहुत बढ़ गया और मुसलमानों के नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने खुले तौर पर कहना शुरू किया कि हिन्दु कांग्रेसी मुसलमानों के जाति दुश्मन हैं। गांधी जी और मोतीलाल को जिन्ना के इस वक्तव्य से बहुत ठेस पहुंची।

देश में राष्ट्रीय राजनीति ऐसी जगह पहुंच गई जहां मोतीलाल को लगा कि आगे कोई रास्ता नहीं है। वे अब ६७ वर्ष के हो गए थे और अपने पत्रों में उन्होंने लोगों को यह लिखना शुरू कर दिया था कि उनके दिन पूरे हो

रहे हैं और उन्हें इस वात का अफसोस है कि जिंदगी में वे जितना करना चाहते थे नहीं कर पाये और उन्हें स्वयं पता नहीं कि जिंदगी के अगले कुछ वर्षों में वे कितना कुछ कर पायेंगे।

अगस्त १९२७ में मोतीलाल वेनिस के लिए रवाना हुए, जहां जवाहर लाल से उनकी मुलाकात हो गई। कमला की तबियत अब काफी ठीक हो चुकी थी। पूरे नेहरू परिवार ने पूरे यूरोप का दौरा किया। दिसम्बर में जवाहर लाल, कमला, इंदिरा और कृष्णा भारत के लिए रवाना हो गए। मोतीलाल ने यूरोप में कुछ महीने और रहने का फैसला किया। इसी बीच उनकी तवीयत खराब रहने लगी। डाक्टरों ने जांचपड़ताल की और पाया कि उनके शरीर में अल्बूमिन और ग्लूकोमा के तत्व हैं। मोतीलाल ने समझ लिया कि अव उनकी जिंदगी के आखिरी दिनों की शुरूआत हो गई है।

नवम्बर १९२७ में अंग्रेज सरकार ने सर जान साइमन की अध्यक्षता में एक कमीशन की घोषणा की यह पता लगाने के लिए कि भारत स्वशासन के योग्य है अथवा नहीं। इस घोषणा के समय मोतीलाल इंग्लैन्ड में थे। उन्होंने क्रुद्ध होकर एक बयान दिया कि ईमानदारी का रास्ता यह है कि अंग्रेज सरकार जो करना चाहती है उसे घोषित कर दे और उसके बाद एक कमीशन इस बात के लिए नियुक्त करे कि वह इस घोषणा को अमली जामा पहनाने वाली योजना का मसौदा तैयार करे। लाला लाजपत राय ने इस सिलसिले में मशहूर बयान दिया और कहा कि भारत के लोगों को साइमन कमीशन का बायकाट करना चाहिए। मोतीलाल ने स्वदेश वापस लौटकर कहा कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट, ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश सरकार को यह रत्ती भर भी हक नहीं है कि वे हमारी मर्जी के खिलाफ हम पर कोई संविधान लादें। मद्रास कांग्रेस में यह फैसला किया गया कि भारत की जनता का लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता है। मोतीलाल ने अंग्रेज सरकार को जोर देकर कहा कि यदि उसने भारतीयों की मनोभावना की कद्र नहीं की तो भारत की जनता और नियति मिल कर खंडित साम्राज्यों की लम्बी सूची में एक नाम और जोड़ देगी। इशारा साफ था और यह अंग्रेज सरकार के लिए बहुत बड़ी चुनौती थी।

साइमन कमीशन ने देश में चल रहे कटु वातावरण को एकाएक

समाप्त कर दिया और सभी राजनीतिक पार्टियां और नेता मिल कर एक हो गए। कांग्रेस, राष्ट्रीय लिबरल फेडरेशन, मुस्लिम लीग सभी एक स्वर से भारत की आजादी की बात करने लगे। साइमन कमीशन का बायकाट का प्रस्ताव विधानसभा में पास हो गया। इसके पक्ष में ६८ और विपक्ष में ६२ मत पड़े।

साइमन कमीशन का न केवल राजनीतिक बल्कि सामाजिक बायकाट भी किया गया। इस कमीशन के सभी सदस्य दिल्ली में 'वेस्टर्न कोर्ट' में ठहराये गए जहां स्वराज पार्टी के अन्य सदस्य भी रहते थे। भारतीय विधानसभा के सदस्यों ने आयोग के सदस्यों को अछूत समझा।

३० अक्टूबर को जब साइमन कमीशन लाहौर पहुंचा तो पुलिस ने रेलवे स्टेशन पर प्रदर्शन करने वाली भीड़ पर लाठी का प्रहार किया। देश के एक अत्यन्त लोकप्रिय नेता लाला लाजपत राय के सीने पर लाठियों से प्रहार किया गया और इसी चोट के कारण घायल होकर १७ नवम्बर को उनकी मृत्यु हो गई। लाला जी की मृत्यु से देश में क्रोध की आग भड़क उठी। और स्थानों पर भी लोगों ने साइमन कमीशन का बायकाट किया। परन्तु सरकार अपने रवैये में सख्त बनी रही। लखनऊ में साइमन का विरोध करने के सिलसिले में जवाहर लाल पर डंडे बरसाये गए। दूसरे दिन फिर जवाहर लाल ने रेलवे स्टेशन पर अन्य लोगों के साथ साइमन कमीशन का विरोध किया। फलस्वरूप उन्हें फिर डंडे खाने पड़े। उनकी किस्मत तेज थी जिस के कारण अधिक घायल होने के पहले ही कांग्रेस के स्वयंसेवक उन्हें उठाकर एक सुरक्षित स्थान पर ले गए।

मोतीलाल जवाहर लाल को घायल देख कर दुखी हुए परंतु यह सोचकर उनका सीना गर्व से फूल उठा कि उनका पुत्र सही मायने में देश सेवा कर रहा है।

गांधी जी ने भावभीने पत्र में जवाहर लाल को लिखा कि भगवान से प्रार्थना है कि वह तुम्हें बहुत साल जिंदा रखें और भारत के ऊपर जो बोझ है, उसको दूर हटाने का अपना श्रेष्ठ साधन तुम्हें बनाए।

नेहरू रिपोर्ट

मद्रास के अधिवेशन में कांग्रेस ने अपनी कार्यसमिति को यह निर्देश दिया कि अन्य दलों के साथ सलाह-मशविरा करके भारत के लिए एक ऐसे संविधान का मसौदा तैयार करे जो सभी पक्ष के लोगों को मंजूर हो। मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना ने भी अपनी कार्यकारिणी को यह अधिकार दिया कि वे इस मामले में कांग्रेस की कार्यसमिति से सलाह-मशविरा करे और सर्वदलीय सम्मेलन में भाग ले।

इस सम्मेलन ने १९ मई १९२८ को पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी वनाने का निश्चय किया जो भारत के प्रस्तावित संविधान के सिद्धांतों का निर्णय करे और इस वारे में रिपोर्ट दे। इस कमिटी ने अगस्त १९२८ में अपनी रिपोर्ट तैयार की जिसे 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से जाना जाता है। इस रिपोर्ट का अनुमोदन नेशनल कांग्रेस, नेशनल लिवरल फेडरेशन और सर्वदलीय सम्मेलन ने किया।

इस रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत की स्थिति ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश (डोमिनियन) की तरह होगी और भारतीय संसद को विदेशी मामलों में उसी तरह के अधिकार प्राप्त होंगे जो किसी भी ब्रिटिश स्वायत्त्ता प्राप्त डोमिनियन को हैं। इस रिपोर्ट में और भी खोलकर कहा गया है कि

भारत की स्थिति कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैन्ड, दक्षिण अफ्रीका तथा आयरिश फ्री स्टेट से किसी भांति कम नहीं होगी।

नेहरू रिपोर्ट के अनुसार विश्व के अन्य संविधानों की भांति भारत के संविधान में भी लोगों को निम्नलिखित मौलिक अधिकार प्राप्त होंगे :–

१) कोई भी भारतीय नागरिक किसी तरह की निजी सम्पत्ति अर्जित कर सकता है।
२) भारत के अल्पसंख्यकों, जिनकी जनसंख्या काफी है, को यह अधिकार होगा कि वे अपने बच्चों को प्राथमिक शिक्षा अपनी भाषा और लिपि में दें जो भारत में इन दिनों प्रचलन में हैं।
३) भारत एक धर्मनिर्पेक्ष राज्य होगा।
४) अछूतों का-सा व्यवहार भारत के किसी नागरिक के साथ नहीं किया जाएगा और हर व्यक्ति को सड़क पर चलने, कुएं से पानी निकालने और दूसरे सार्वजनिक स्थानों पर घूमने का पूर्ण अधिकार होगा।
५) नागरिकता के मामले में पुरूष और स्त्री दोनों को समान अधिकार प्राप्त होंगे।
६) अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए मजदूरों को अपना संगठन बनाने का पूरा अधिकार होगा।
७) खेतिहर मजदूरों को अच्छी एवं उचित मजदूरी दी जाएगी।

इस संविधान में इस बात की भी चर्चा है कि बाकी बचे हुए सारे अधिकार केन्द्रीय सरकार में निहित होंगे।

संविधान में इस बात का भी जिक्र है कि देश में एक प्रधानमंत्री होगा और अधिक से अधिक ६ मंत्री होंगे जो संयुक्त रूप से संसद के प्रति उत्तरदायी होंगे।

संविधान में सुप्रीम कोर्ट एवं हाई कोर्ट की स्थापना के बारे में भी लिखा गया है।

संविधान में इस बात का भी प्रावधान था कि देश में सरकारी

नियुक्तियों के लिए लोक सेवा आयोग की स्थापना हो।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के बारे में निम्नलिखित प्रावधान थेः—

१) हाउस आफ रिप्रजेन्टेटिस, जिसे एक अर्थ में लोकसभा भी कहा जाता है, के सदस्य देशभर के सभी धर्मों के मतदाताओं द्वारा चुने जाएंगे और यही बात प्रांतीय विधानसभाओं के लिए भी लागू होगी।
२) मुसलमानों को छोड़कर किन्हीं और साम्प्रदाय के लोगों के लिए कोई आरक्षण नहीं होगा। और मुसलमानों को भी उन्हीं प्रांतों में आरक्षण मिलेगा जहां वे अल्पमत में है। गैरमुसलमानों को उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत में आरक्षण मिलेगा।
३) आरक्षण केवल दस वर्षों के लिए होगा। उसके बाद यह फिर से विचार किया जाएगा कि आरक्षण रहे या नहीं।

नेहरू कमिटी की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें सही अर्थ में साम्प्रदायिकता पर काबू पाने का प्रयास किया गया था। सही मायने में भारत में पहली बार एक ऐसे संविधान का प्रारूप बना जिसमें सबों की सहमति थी। इस बात पर सभी पक्ष के लोग सहमत थे कि भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर औपनिवेशिक दर्जा मिलना चाहिए।

कलकत्ता कांग्रेस अध्यक्ष मोतीलाल

१९२८ के अंत में कलकत्ता में कांग्रेस का भव्य अधिवेशन हुआ। इसके सभापति मोतीलाल थे। उनका जैसा स्वागत कलकत्ता में हुआ, वह अपूर्व था। वह जिस रथ पर बैठे थे, वह ८६ घोड़ों द्वारा खींचा गया था। पिछले सभी अधिवेशनों से इस अधिवेशन में अधिक प्रतिनिधि और दर्शक थे।

इस अधिवेशन में पुराने कांग्रेसियों और उग्रवादियों में भारत के राष्ट्रीय लक्ष्य को लेकर बड़ा मतभेद हुआ। पुराने कांग्रेसियों ने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार करने पर जोर दिया जबकि उग्रपंथियों ने इससे आगे बढ़कर पूर्ण स्वाधीनता की मांग की। महात्मा गांधी ने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार किये जाने पर जोर दिया। उनका प्रस्ताव यह था कि मौजूदा राजनीतिक स्थिति को देखते हुए नेहरू रिपोर्ट को पूर्णतया स्वीकार कर लेना ही उचित है, बशर्ते ब्रिटिश संसद सन् १९१९ की ३१ दिसम्बर के पहले-पहले उसकी सिफारिशों को कार्यान्वित कर दे। अगर उस तारीख तक वह ऐसा नहीं कर सके तो कांग्रेस के लिए सिवा असहयोग आंदोलन को संगठित कर

संघर्ष चलाने के और कोई रास्ता नहीं है।

इस कांग्रेस में मोतीलाल ने अंग्रेजी सरकार के रुख की निन्दा की और साफ-साफ कह दिया कि भारत अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए किसी भी शक्ति और जुल्म का सामना करने को तैयार है।

इस अधिवेशन में मोतीलाल ने कहा कि वह स्वयं चाहते हैं कि भारत को पूर्ण स्वतंत्रता मिले। लेकिन यदि वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों में भारत को औपनिवेशिक दर्जा भी मिलता है तब भी उसे स्वीकार करने में कोई ऐतराज नहीं होना चाहिए। बशर्ते वह औपनिवेशिक दर्जा वैसा ही हो जैसा कि कनाडा, दक्षिण अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया या दूसरे अन्य देशों को दिया गया है।

उन्होनें आगे कहा कि मेरे विचार सबों को पसंद नहीं आ सकते हैं, खासकर युवकों को। क्योंकि वे बेचैन हैं और उनका बेचैन होना भी स्वाभाविक है। परंतु मेरी सलाह होगी कि उन्हें व्यावहारिक होना चाहिए। बुजुर्गों और नवयुवकों के उद्देश्य में कोई अंतर नहीं है। अंतर केवल विचारधारा का है और इस बारे में सबसे अच्छी सलाह यही है कि दोनों धैर्य रखें।

कलकत्ता कांग्रेस में विदेशों की प्रगतिशील संस्थाओं के अनेक शुभ संदेश आए। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अमरीका से और श्रीमति सनयात सेन ने चीन से अपने संदेश भेजे। फारस की सोशलिस्ट पार्टी और न्यूजीलैन्ड की कम्युनिस्ट पार्टी ने भी शुभकामनायें भेजीं। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी ने इन शुभकामनाओं के लिए आभार प्रकट किया। यह भी निश्चय हुआ कि कांग्रेस में एक वैदेशिक विभाग खोला जाए।

कांग्रेस ने अपने अनुयायिओं को निम्नलिखित आदेश दिये।

१) एसेम्बलियों के अंदर और बाहर इस बात का प्रयास हो कि मादक वस्तुओं का प्रयोग रुक सके। पिकेटिंग भी इस कार्यक्रम में शामिल था।

२) विदेशी वस्तुओं के वहिष्कार के लिए एसेम्वलियों क अंदर और बाहर दोनों जगह पूरी कोशिश होनी चाहिए।

३) जहां कहीं भी जुल्म-ज्यादतियां होती हों, वहां, यदि लोग तैयार हों, तो अहिंसात्मक आनदोलन होना चाहिए।

४) कांग्रेसी मेम्बर रचनात्मक कार्यों के लिए विधानालयों में पूरी कोशिश करें।

५) कांग्रेस का संगठन बढ़ाया जाए और इसके सदस्यों की संख्या में काफी वृद्धि की जाए।

६) महिलाओं में प्रचार किया जाये और उनका संगठन किया जाए।

७) इस प्रकार के प्रयास किये जाएं जिससे समाज की सारी बुराइयां दूर हो जाएं।

८) हिन्दू कांग्रेस वालों का यह फर्ज होगा कि वे अछूत समस्या को हल करें। अछूतों को उन्नति करने के लिए मदद देना उनका कर्त्तव्य होगा।

९. स्वयं सेवकों की भर्ती इसलिये की जाए कि वे शहरों में मजदूरों की सेवा कर सकें और गांवों में जाकर किसानों में भी काम कर सकें।

१०. ऐसे तमाम काम किये जाएं जिससे राष्ट्र के हितों की रक्षा हो और साथ ही राष्ट्र के विभिन्न वर्गों और स्वार्थों का मजबूत संगठन हो

कांग्रेस अधिवेशन ने राष्ट्र की शिथिलता दूर कर दी और आगे आने वाली लड़ाई के लिए देश को तैयार कर दिया।

लाहौर कांग्रेस

१९२९ के शुरू में गांधी जी ने लम्बी विदेश यात्रा की योजना बनाई। परन्तु मोतीलाल ने उन्हें सलाह दी कि वे विदेश नहीं जाएं। उन्हें इस बात का आभास होने लगा कि १९२९ में बड़ी राजनीतिक सरगर्मी होने वाली है। बाद की घटनाओं से ऐसा लगा कि उनकी भविष्यवाणी करीब-करीब ठीक ही थी।

मार्च १९२९ में गांधी जी को कलकत्ता में कैद कर लिया गया। उन पर यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने विदेशी कपड़ों की होली जलाई है। देश में राष्ट्रीयता की भावना जोर पकड़ने लगी। इसी बीच ८ अप्रैल को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त नामक दो नवयुवकों ने विधानसभा में बम फेंके। उनका उद्देश्य किसी को मारना नहीं, बल्कि उन लोगों को जनता की आवाज सुनने के लिए मजबूर करना था जो कान में रूई डालकर बैठे हुए थे। आतंकवाद की और भी कई घटनाएं हुईं और कुछ क्रान्तिकारी रातोंरात प्रसिद्धि पा गए।

१९३० का वर्ष हर दृष्टिकोण से कठिन साबित होने वाला था। इसलिए कांग्रेस के शीर्षस्थ नेता इस पहलू पर विचार करने लगे कि इसका

अध्यक्ष कौन हो। कई लोग गांधी जी को अध्यक्ष बनाना चाहते थे, परन्तु गांधी जी जवाहर लाल के पक्ष में थे। मोतीलाल भी गांधी जी के विचार से सहमत थे। अंत में गांधी जी के जोर देने पर जवाहर लाल कांग्रेस के अध्यक्ष बनाए गए। बल्लभ भाई पटेल ने अपना नाम वापस ले लिया।

१९२९ में कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करने के लिए जवाहर लाल २५ दिसम्बर को लाहौर पहुंचे। लाहौर में उनका अभूतपूर्व स्वागत किया गया। सड़कों पर झंडियां सजाई गईं और रंग बिरंगी रोशनियां जलाई गईं। अपार जन समूह ने जवाहर लाल जिंदाबाद के नारे लगाये। मोतीलाल, स्वरूप रानी ने अनारकली के एक ऊंचे मकान से यह दृष्य देखा और अन्य लोगों की तरह उन्होंने भी जवाहर लाल पर फूल बरसाये।

कांग्रेस के इतिहास में यह पहली घटना थी जब पिता के स्थान पर पुत्र कांग्रेस का अध्यक्ष बन रहा था। जब मोतीलाल ने जवाहर लाल को कांग्रेस अध्यक्ष का भार सौंपा तो उन्होंने फारसी की एक कहावत सुनाई जिसका अर्थ था – 'बाप जिसे हासिल नहीं कर सका, उसे बेटे ने हासिल कर लिया।'

लाहौर कांग्रेस में जवाहर लाल ने घोषित किया कि नेहरू रिपोर्ट में उपनिवेशवाद के लिए जो सहमति व्यक्त की गई थी उसकी अवधि समाप्त हो गई है। इसलिए अब देश के सामने स्वराज का एक ही अर्थ है – पूर्ण स्वाधीनता। केन्द्रीय और प्रान्तीय विधानसभाओं के कांग्रेसी सदस्यों को आदेश दिया गया कि वे अपने पदों से इस्तीफा दे दें। ३१ दिसम्बर को आधी रात के समय रावी के तट पर आजादी का झण्डा फहराया गया। जन समूह में अपूर्व उत्साह था।

लाहौर कांग्रेस ने कांग्रेस जनों को यह आदेश दिया कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू कर दिया जाए। गांधी जी ने २६ जनवरी को स्वाधीनता दिवस मनाने का आह्वान किया। उस दिन भारत के प्रायः सभी गांवों और शहरों में असंख्य लोगों ने अंग्रेज हुकूमत के नीचे नहीं रहने की शपथ खायी।

स्वतंत्रता दिवस मनाने के लिए जनता का इतना अधिक उत्साह देखकर गांधी जी दंग रह गए। फरवरी के अंत में उन्होंने ऐलान किया कि वे

नमक कानून तोड़ेंगे। उन्होंने यह भी फैसला किया कि वे स्वंयसेवकों के एक दल का नेतृत्व करते हुए साबरमती से चलकर पश्चिमी तट तर डांडी नामक स्थान की ओर जाएंगे और इस तरह अपने आन्दोलन की शुरुआत करेंगे।

साबरमती आश्रम में ११ मार्च को बेशुमार लोग जमा हुए। दूसरे दिन सुबह गांधी जी और उनके अन्य सदस्यों ने अहमदाबाद से डांडी की २४२ मील लम्बी यात्रा शुरू की और जहां-जहां से गांधी जी गुजरे लोगों में बिजली की लहर फैल गई। नमक राष्ट्रीय आन्दोलन का एक प्रतीक बन गया। २३ मार्च को मोतीलाल गांधी जी से मिले और यह फैसला किया कि वे आनन्द भवन को कांग्रेस को उपहार के रूप में दे देंगे। उस समय भी आनन्द भवन की कीमत लाखों में थी। आनंद भवन का इस तरह कांग्रेस को उपहार के रूप में दे देना मोतीलाल के लिए एक बहुत बड़ा त्याग था। ६ अप्रैल को, जो नमक आंदोलन के लिए निश्चित दिन था, जवाहर लाल ने कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से मोतीलाल के हाथों यह उपहार स्वीकार किया।

शीघ्र ही अंग्रेज सरकार को पता चल गया कि गांधी जी के आंदोलन का परिणाम बहुत खतरनाक हो सकता है और भारत में अंग्रेज सरकार का तख्ता भी हिल सकता है। इंगलैन्ड के विदेशमंत्री और प्रधानमंत्री ने तत्कालीन वायसराय को आदेश दिया कि क्रांतिकारी नेताओं के साथ कठोर कार्रवाई की जाए। फलस्वरूप कांग्रेस को इतने कठोर दमनचक्र से गुजरना पड़ा जितना इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था। सरकार ने कठोर अध्यादेश जारी करके सत्याग्रह को कुचल देने का पूरा प्रयास किया।

अंग्रेज सरकार ने एक चालाकी की। उसे पता था कि गांधी जी को जेल देने से भारत में आंदोलन की आग भभक उठेगी जिस पर काबू पाना कठिन होगा। इसलिए उसने गांधी जी को छोड़ शेष सभी नेताओं को जेल में डाल दिया। वल्लभभाई पटेल ७ अप्रैल को गिरफ्तार हुए तथा जवाहर लाल १४ अप्रैल को गिरफ्तार किए गए। शेष नेता एक के बाद एक गिरफ्तार हो गए। जवाहर लाल को ६ महीने की सजा दी गई और वे इलाहाबाद के नैनी जेल में डाल दिये गये। उन्होंने अपने पिता मोतीलाल को कांग्रेस का कार्यवाहक अध्यक्ष नामजद किया।

एकाएक मोतीलाल का स्वास्थ्य गिर गया। वे बीमार से रहने लगे। उनकी बीमारी को देख कर डा० अन्सारी बड़े चिंतित हो गए और उन्होंने गांधी जी को तुरन्त लिख भेजा। डा० अंसारी ने मोतीलाल को कुछ दिनों तक पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी। लेकिन मोतीलाल ने अंसारी की सलाह पर काई ध्यान नहीं दिया। मोतीलाल ने कहा कि जब तक देश में तूफान मचा हुआ है और जवाहर लाल जेल में हैं तब तक वे इस संघर्ष से हट कर आराम नहीं कर सकते।

देश में गांधी जी के नाम की धूम मच गई थी और लोग गांधी जी के आह्वान पर पूर्णतया अपने को न्यौछावर करने को तैयार थे। सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि इस आंदोलन में पुरूषों के साथ स्त्रियां भी आगे बढ़ कर सामने आई थीं। इलाहाबाद में जवाहर लाल की मां वृद्धा स्वरूप रानी और उनकी पत्नी कमला भी जुलूसों का संगठन करते, सभाओं में भाषण देते तथा विदेशी कपड़े और शराब की दुकानों पर धरना देते थे। जेल में जवाहर लाल को जब यह खबर मिली तो उनका सिर गर्व से ऊपर उठ गया।

उधर मोतीलाल पूरी शक्ति से आंदोलन को सफल बनाने में लगे हुए थे। जून में मोतीलाल बम्बई गए। बंबई कांग्रेस के आंदोलन का केन्द्र था। उनके साथ स्वरूप रानी और कमला भी आ गईं। अपार जन समूह ने उनका हृदय खोलकर स्वागत किया। लेकिन यह देखकर मोतीलाल को बेहद दुख हुआ कि कांग्रेस के जुलूसों पर पुलिस ने बहुत ही निमर्मता के साथ हमले किए।

इस बीच मोतीलाल का स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा। इलाहाबाद लौटने पर उन्होंने योजना बनाई कि वे पहली जुलाई को छुट्टी लेकर मसूरी जाएंगे। लेकिन उससे एक दिन पहले ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और जवाहर लाल के साथ नैनी जेल में डाल दिया गया।

पिता पुत्र जिस बैरक में रखे गए थे, वह कष्टप्रद था। उसके सामने का बरामदा इतना संकरा था कि न तो धूप से रक्षा हो पाती थी और न ही वर्षा से। लेकिन मोतीलाल जेल के किसी दूसरे हिस्से में जाने को तैयार नहीं थे।

शायद वे जीवन की अंतिम घड़ी में अपने पुत्र का साथ नहीं छोड़ना चाहते थे।

नैनी जेल में जवाहरलाल ने अपने बीमार पिता की देखभाल स्वयं करनी शुरू कर दी। जवाहर लाल की सेवा देखकर मोतीलाल ने कहा था – "जवाहर मेरी सब जरूरतों को पहले से ही सोच लेते हैं और मेरे लिए कुछ करने को रह ही नहीं जाता। काश बहुत-से ऐसे पिता होते जिन्हें अपने बेटों पर ऐसा ही फख होता।"

मोतीलाल नैनी जेल में दिन बिता रहे थे। अचानक २७ जुलाई १९३० को तेज बहादुर सप्रु और एम० आर० जयकर वहां पहुंचे। वे शांति का संदेश लेकर आए थे। इस बात की शुरुआत उस इंटरव्यू से हुई थी जो मोतीलाल ने लंदन के डेली हेराल्ड के संवाददाता जार्ज स्लोकोम्ब को दिया था। यह इंटरव्यू बम्बई में २० जून को दिया गया था। इस इंटरव्यू के कारण ही अंत में ८ महीनें के बाद गांधी-इरविन समझौता हुआ।

संवाददाता ने पूछा था कि अगर गोल मेज सम्मेलन के लिए उन्हें निमंत्रित किया जाए तो उनका रवैया क्या होगा? इस पर मोतीलाल ने कहा था कि यदि सम्मेलन आजाद भारत के लिए संविधान बनाने के लिए हो रहा है और ऐसा करने में यह शर्त निहित है कि भारत की खास जरूरतों और हालतों और हमारे पिछले सम्पर्क के लिए आवश्यक, हमारे आपसी सम्बन्धों में कोई आपसी फेरबदल की जा सकेगी तो, जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मेरा ख्याल यह होगा कि में सम्मेलन में हिस्सा लेने के निमंत्रण को स्वीकार किए जाने की सिफारिश कांग्रेस से करूंगा। हमारे लिए खुद अपने घर में मालिक होना बहुत जरूरी है, लेकिन हम इसके लिए तैयार हैं कि जिस अवधि में भारत स्थित ब्रिटिश प्रशासन एक उत्तरदायी भारत सरकार को शक्ति हस्तांतरित करे, उतनी अवधि के लिए हम किन्हीं उचित शर्तों को मान लें। इन शर्तों के बारे में बातचीत करने के लिए हमें ब्रिटिश लोगों से मिलना चाहिए और यह बराबरी के दर्जे पर एक राष्ट्र के दूसरे राष्ट्र से बातचीत के रूप में होना चाहिए।

मोतीलाल ने जो इंटरव्यू दिया वह कुल मिलाकर उन्हीं बातों की पुष्टि

थी, जो उन्होंने वायसराय के साथ अपनी बातचीत के दौरान कही थी।

नैनी जेल में सप्रु और जयकर ने मोतीलाल और जवाहर लाल से बातचीत के दौरान पाया कि ये दोनों पिता पुत्र किसी भी हालत में अंग्रेज सरकार से समझौता करने को तैयार नहीं हैं। इसके अतिरिक्त वे बिना गांधी जी से सलाह मशविरा किए बात नहीं करना चाहते थे। इस कारण सरकार ने यह प्रबन्ध किया कि दोनों नेहरू एक विशेष रेल गाड़ी से पूना जाएं। वहां यरवदा जेल में गांधी जी से विस्तार से बातचीत हुई जिसमें दोनों नेहरू के अलावा वल्लभभाई पटेल, सरोजिनी नायडू, जयरामदास दौलतराम, सैयद महमूद, सप्रू और जयकर भी शामिल हुए। दुर्भाग्यवश इस बातचीत का कोई परिणाम नहीं निकल सका क्योंकि ये नेता किसी एक बात पर सहमत नहीं हो पाए।

सुलह करने वालों ने वस्तुस्थिति की सूचना वायसराय को दे दी थी।

इस बातचीत से एक बात स्पष्टरूप से सामने आई और वह यह कि गांधी जी ब्यौरों को लेकर सौदा करने को राजी थे जब कि मोतीलाल और जवाहर लाल इस बात पर जोर दे रहे थे कि अंग्रेज के हाथों से भारतीय हाथों में शक्ति आने के बारे में काई ठोस वादा किया जाना चाहिए।

इस बीच मोतीलाल का स्वास्थ्य और भी तेजी से गिरना शुरू हो गया और अंग्रेज सरकार ने फैसला किया कि स्वास्थ्य के आधार पर मोतीलाल को जेल से रिहा कर दिया जाए। मोतीलाल ने इसका सख्त विरोध किया। यहां तक कि वायसराय इरविन को तार भेजा कि उन के ऊपर कोई कृपा या मेहरबानी न की जाए।

परन्तु, उनका स्वास्थ्य चिन्ता का कारण बन रहा था। उनका वजन भी घटना जारी था और धीरे-धीरे लोगों को पहचानने की शक्ति भी वे खो रहे थे। सरकार नहीं चाहती थी कि मोतीलाल की मृत्यु जेल में हो। इसलिए ११ सितम्बर को उन्हें जेल से छोड़ दिया गया। तीन दिनों के बाद वे मसूरी चले गए। उनके साथ स्वरूप रानी, कृष्णा, विजयलक्ष्मी और उनके बच्चे गए। कमला अपने ससुर के साथ मसूरी नहीं गई क्योंकि वे स्थानीय कांग्रेस

के कार्य में बहुत व्यस्त थीं और इलाहाबाद छोड़ना उनके लिए संभव नहीं हो पा रहा था। खुद कमला का स्वास्थ्य भी खराब रहने लगा था।

११ अक्तूबर को जवाहर लाल को जेल से रिहा किया गया। परंतु वे इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि वे अंग्रेज सरकार की आँख की किरकिरी हैं और किसी भी दिन अंग्रेज सरकार उन्हें दुबारा जेल में डाल सकती है। इसी कारण जब तक वे जेल से बाहर थे अधिक से अधिक काम करना चाहते थे। पिता के गिरते हुए स्वास्थ्य की खबर पाकर जवाहर लाल अपनी पत्नी कमला के साथ मसूरी चले गए। १८ अक्तूबर को वे दोनों पति-पत्नी किसान सम्मेलन में हिस्सा लेने के लिए इलाहाबाद वापस आए। अगले दिन जवाहर लाल को इलाहाबाद में आनंद भवन के दरवाजे पर फिर गिरफ्तार कर लिया गया।

जवाहर लाल की गिरफ्तारी की बात सुनकर मोतीलाल को बहुत दुख हुआ। मोतीलाल ने आंदोलन की बागड़ोर फिर संभाल ली। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने समस्त प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों को लिखा कि मोतीलाल नेहरू ने फैसला किया है कि कांग्रेस अध्यक्ष को ढाई साल की कैद की जो सजा दी गई है उसका विरोध करने के लिए भारत कोने-कोने में १६ नवम्बर, १९३० का दिन जवाहर दिवस के रूप में मनाया जाए। १६ नवम्बर को पूरे देश में अनगिनत सभाएं हुईं जिसमें जवाहर लाल के जोशीले भाषण पढ़े गए जिसके कारण उन्हें सजा दी गई थी। १७ नवम्बर को मोतीलाल कलकत्ता चले गए जहां देश के प्रसिद्ध डाक्टरों ने उन्हें देखा। उस समय के एक प्रसिद्ध डाक्टर डा० विधानचन्द्र राय भी थे जिन्होंने मोतीलाल की पूरी डाक्टरी परीक्षा की।

मोतीलाल ने कलकत्ता से विजयलक्ष्मी को लिखा कि एक्सरे से पता चलता है कि दिल, फेफड़े और जिगर सभी पर रोग का असर है। वह कलकत्ता के एक उप नगर में बने हुए उद्यान-गृह में रहने के लिए चले गए और वहीं उनका सारा परिवार भी चला गया। केवल कमला न आ सकी क्योंकि वे इलाहाबाद में कांग्रेस के काम में व्यस्त थीं। इसके शीघ्र बाद कमला को भी कांग्रेस आंदोलन में सक्रिय हिस्सा लेने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया।

महा प्रयाण

१ जनवरी १९३१ को कमला की गिरफ्तारी की खबर सुनकर मोतीलाल इलाहाबाद लौट आए। १२ जनवरी को जब वे जवाहर लाल से मिलने नैनी जेल गये तो मोतीलाल के गिरते स्वास्थ्य को देखकर जवाहर लाल को बहुत ठेस पहुंची। मोतीलाल का चेहरा बुरी तरह सूजा हुआ था और उन्हें बोलने में भी कठिनाई होती थी।

२६ जनवरी को जवाहर लाल को जेल से छोड़ दिया गया और इसी तरह गांधी जी को भी यरवदा जेल से रिहा कर दिया गया। जवाहर लाल चाहते थे कि गांधी जी को इलाहाबाद बुलाया जाए और जब उन्होंने इसकी चर्चा मोतीलाल से की तो फौरन वे राजी हो गए और बड़ी व्यग्रता से गांधी जी का इंतजार करने लगे। दूसरे दिन गांधी जी बम्बई से इलाहाबाद के लिए चल पड़े। उस दिन बम्बई में एक महती जनसभा को उन्होंने संबोधित किया था। इलाहाबाद पहुंचते-पहुंचते उन्हें काफी रात हो गयी। लेकिन मोतीलाल सारी रात गांधी जी से मिलने के लिए जगे रहे और जैसे ही गांधी जी मोतीलाल से मिले और उन्हें दो-चार सहानुभूति के शब्द कहे, मोतीलाल का चेहरा खिल उठा। स्वरूप रानी को भी गांधी जी के आने पर बड़ी राहत हुई।

कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक आनंद भवन में हो रही थी। जो भी कांग्रेस नेता इलाहाबाद आए थे। मोतीलाल को देखना चाहते थे। डाक्टरों ने मोतीलाल को बिछावन पर पड़े रहने की सलाह दी थी। परंतु उन्होंने कुर्सी पर बैठने की जिद की और जो लोग भी उनसे मिलने आए उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार किया। गले में सूजन होने के कारण उन्हें बोलने में कठिनाई होती। परन्तु फिर भी वे मुस्करा रहे थे। कभी-कभी मित्रों के प्रश्नों का उत्तर लिखकर देते थे।

गांधी जी को उन्होंने बड़े भाव-भीने शब्दों में कहा, "मैं तो जा रहा हूँ गांधी जी। जब स्वराज मिलेगा, तब मैं इस दुनिया में नहीं रहुंगा। लेकिन मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि आपको स्वराज्य प्राप्त हो गया है।

जो लोग मोतीलाल के दर्शन करने आए थे वह धीरे-धीरे अपने घर लौट गए। परन्तु गांधी जी वहीं आनंद भवन में टिके रहे। उनके साथ मोतीलाल के तीन अन्य मित्र भी थे – डा० अंसारी, डा० विधानचन्द्र राय और जीवराज मेहता।

४ फरवरी को मोतीलाल की तबीयत कुछ ठीक जान पड़ी और जवाहर लाल तथा परिवार के अन्य सदस्यों ने यह फैसला किया कि मोतीलाल को लखनऊ ले जाया जाए जहां चिकित्सा की बेहतर सुविधा प्राप्त है। लोग कार में धीरे-धीरे मोतीलाल को लखनऊ ले गये। परंतु फिर भी मोतीलाल इस यात्रा से बहुत थक गए। ५ फरवरी को उनकी हालत सुधरती दिखाई देती थी। परन्तु शाम होते-होते फिर उनकी हालत बिगड़ने लगी। ६ फरवरी को जवाहर लाल उनकी शैय्या के बगल में बैठे थे।

रात मोतीलाल ने बड़ी बेचैनी से काटी थी। सुबह होते-होते जवाहर लाल ने यह महसूस किया कि उनके पिता के मुख पर एक अजीब तरह की शांति व्याप्त है और जो संघर्ष वह अपने आपसे कर रहे थे वह समाप्त हो गया है। उन्हे बड़ी खुशी हुई और लगा कि उनके पिता स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं। थोड़ी देर के लिए उन्होंने यह सोचा कि उनके पिता गहरी निद्रा में सो गए हैं।

परंतु यह क्या था। पति की शांत मुद्रा को देखकर उनकी मां ने जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। यह देखकर जवाहर लाल ने अपनी मां को चुप रहने का आग्रह किया क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं उनके पिता की नींद न खुल जाए।

परन्तु उन्हें क्या पता था कि यह उनकी चिरनिद्रा है, जिससे वे कभी नहीं जगने वाले थे।

इलाहाबाद लौटकर जवाहर लाल ने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ मोतीलाल को गंगा के किनारे पवित्र अग्नि में समर्पित कर दिया और भारी कदमों से आनंद भवन लौट आए – दुखी, निराश और अकेले।

इस तरह कांग्रेस के संघर्ष को एक सशक्त हाथों में देकर मोतीलाल इस दुनिया से सदा के लिए विदा हो गए। इस सशक्त व्यक्ति का नाम था जवाहर लाल नेहरू।

उपसंहार

मोतीलाल का जीवन हर अर्थ से एक महापुरुष का जीवन था। उनका बचपन कठोर संघर्ष में बीता। जन्म के पहले ही पिता का साया सिर से उठ गया। अभी बड़ी मुश्किल से जवानी में कदम ही रखा था कि पिता तुल्य बड़े भाई नंदलाल गुजर गए और एक बहुत बड़े परिवार का बोझ अचानक मोतीलाल के कंधों पर आ गया।

मोतीलाल ने उन दिनों वकालत का पेशा शुरू ही किया था। वे पूरी तरह अपने काम में डूब गए और अपने को शेष दुनिया से काट लिया। कठोर परिश्रम से उन्होंने असंभव को संभव कर दिया और न केवल पर्याप्त धन ही अर्जित किया, बल्कि यश भी कम नहीं कमाया। अपनी वकालत के कारण मोतीलाल को पैसा पानी की तरह आ रहा था। परिणामस्वरूप उन्होंने परिवार को बड़े ठाट-बाट से पश्चिमी तौर-तरीके से रखना शुरू किया।

वकालत में मोतीलाल को जैसी अभूतपूर्व सफलता मिली, बिरलों को मिल पाती है। ४० वर्ष की उम्र होते-होते उनकी आमदनी इलाहाबाद जैसे छोटे शहर में १० हजार रुपया महीना पहुंच गयी। उन दिनों १० हजार रुपये का बड़ा महत्व था।

मोतीलाल ने रुपये से कभी प्रेम नहीं किया। अपने लड़के जवाहर लाल और अपने भतीजों की शिक्षा पर उन्होंने बड़ी उदारता से खर्च किया। उनके भतीजे भाई नंदलाल की मृत्यु के बाद उन पर निर्भर थे। मोतीलाल ने अपने पत्रों में जवाहर लाल को हमेशा ऊँचा सोचने और बड़ा काम करते रहने की प्रेरणा दी। इन पत्रों को जवाहर लाल के जीवन पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा।

मोतीलाल ने बड़े ठाट-बाट से आंनद भवन बनाया और उसमें दुनिया के विभिन्न कोनों से फर्नीचर और सजावट का सामान मंगाया। धीरे-धीरे आनंद भवन देश की राजनीति का प्रमुख केन्द्र बन गया।

मोतीलाल सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वास के कठोर विरोधी थे। १८९९ और १९०० ईस्वी में जब वे यूरोप का भ्रमण कर भारत लौटे तो रूढ़िपंथी कश्मीरी ब्राह्मणों ने उन्हें 'प्रायश्चित' करने को कहा। मोतीलाल आग बबूला हो गए और उन्होंने 'प्रायश्चित' करने से साफ इंकार कर दिया।

मोतीलाल अपने एकमात्र पुत्र जवाहर लाल को अच्छी से अच्छी शिक्षा देना चाहते थे। इसके लिए अंग्रेज अध्यापकों द्वारा उन्हें घर पर ही शिक्षा दिलाई गई।

मोतीलाल स्वयं भी अनुशासनप्रिय थे और दूसरों से भी ऐसी ही उम्मीद करते थे।

राजनीति में मोतीलाल की सक्रिय भूमिका का बहुत कुछ श्रेय जवाहर लाल को है जो इंगलैन्ड से पत्र लिखकर अपने पिता से स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति के बारे में पूछा करते थे।

मोतीलाल शुरू से ही संवैधानिक पुरुष थे और सत्याग्रह करके या आन्दोलन छेड़कर कुछ हासिल नहीं करना चाहते थे। परंतु जलियांवाला बाग के अत्याचार ने उनकी आंखें खोल दी और वे गांधी जी के परम अनुयायी हो गए। फिर क्या था। उन्होंने अपनी जीवन-पद्धति बदल दी।

आनंद भवन कांग्रेस को दान में दे दिया और स्वतंत्रता आन्दोलन में बिना किसी हिचकिचाहट के कूद पड़े। मोतीलाल राजाओं जैसा जीवन व्यतीत करते थे। अब अचानक एक साधारण आदमी की तरह रहने लगे। यही नहीं, अंग्रेजों ने उन्हें साधारण आदमी की तरह भी घर में नहीं रहने दिया, बल्कि बार-बार जेल में डालकर कठोर कारावास की सजा दी।

बाद के वर्षों में मोतीलाल साये की तरह गांधी जी के साथ रहे।

स्वराज पार्टी के नेता के रूप में और केन्द्रीय विधान सभा में विपक्ष के नेता के रूप में मोतीलाल ने जो काम किया, वह इतिहास में सदा अमर रहेगा।

अमृतसर कांग्रेस तथा कलकत्ता कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में मोतीलाल ने कांग्रेस को जो दिशा दी, वह हमेशा याद रहेगा। ये दोनों अधिवेशन अपने-अपने दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण थे। जब अमृतसर अधिवेशन में मोतीलाल ने अंग्रेजों के नृशंस अत्याचार की बात दोहरायी तो कलकत्ता कांग्रेस में उन्होंने स्वराज का नारा लगाया।

लाहौर में कांग्रेस की बागडोर अपने बेटे के हाथों में देकर उन्होंने उचित ही कामना की कि जो काम पिता न कर सका, वह बेटा कर दिखायेगा। और सचमुच मोतीलाल के अरमानों को जवाहार लाल ने पूरा किया।

मोतीलाल यदि चाहते तो एक ऐश्वर्य भरा जीवन व्यतीत कर सकते थे। बदले में उन्होंने अपने लिए कांटों का ताज चुना।

यह सच है कि मोतीलाल को राष्ट्रीय आंदोलन में कूदने की प्रेरणा गांधी जी से मिली, परन्तु अपने पुत्र जवाहर लाल के प्रति उनका जो प्रेम था, उसने मोतीलाल के जोश को कभी ठंडा नहीं होने दिया। पिता-पुत्र ने दो मित्रों के समान भारत की आजादी का इतिहास लिखा।

गिरते हुए स्वास्थ्य के बावजूद मोतीलाल दिन-रात आजादी की लड़ाई

में सक्रिय रहे। उनका एक ही सपना था कि भारत किसी तरह आजाद हो। मृत्यु-शय्या पर भी गांधी जी से उन्होंने कहा था – "मैं तो जा रहा हूँ गांधी जी। जब स्वराज मिलेगा, तब मैं इस दुनिया में नहीं रहूँगा। लेकिन मैं इस बात को अच्छी तरह जानता हूँ कि आपको स्वराज प्राप्त हो गया है।"

मोतीलाल देश की आजादी को नहीं देख सके जिसके लिए उन्होंने अपने को तिल-तिल जलाया। परन्तु आजाद देश उनके बलिदान को कभी नहीं भूलेगा।

"मैं मोतीलाल नेहरू के निकट कैसे आया"

डा० राजेन्द्र प्रसाद

मैं पंडित मोतीलाल से सर्व प्रथम १९२० में मिला। उसके पहले मैंने उन्हें दूर से इलाहाबाद में देखा था जब कि उनके घर में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की मीटिंग हुई थी। मैं उस सभा में एक सदस्य की हैसियत से पहुंचा था।

सुनने में यह विचित्र लगेगा, लेकिन मैं मोतीलाल जी के करीब राजनीतिक कारण से नहीं आया बल्कि वकालत के कारण। एक बड़ा मुकदमा था जिसमें एक बड़ी सम्पत्ति का मामला झगड़े में पड़ा हुआ था। पं. मोतीलाल नेहरू एक पक्ष से वकील थे और मैं पंड़ित जी का जूनियर था। यह एक बहुत ही दिलचस्प मुकदमा था जिसमें देश के अधिकांश बड़े वकील एक पक्ष या दूसरे पक्ष से मुकदमे की पैरवी कर रहे थे। मद्रास के एस.

श्रीनिवास आयंगर, स्वर्गीय देशबन्धु चितरंजनदास, श्री वर्दाचारी और स्व० एन० एन० सरकार इस मुकदमे में लगे हुए थे। मुकदमे के कारण मुझे पंडित मोतीलाल नेहरू के समीप आने का मौका मिला और बाद में पंडित जी की और मेरी राजनीतिक गतिविधियां एक थीं और इस कारण यह जान-पहचान घनिष्ठ संबंध में बदल गयी।

इसी समय कांग्रेस घनघोर राष्ट्रीय आन्दोलन में लगा हुआ था। दिसम्बर १९१९ के अंतिम सप्ताह में अमृतसर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ जिसकी अध्यक्षता पंडित मोतीलाल नेहरू ने की। मैं इस अधिवेशन में उपस्थित नहीं हो सका क्योंकि मैं मुकदमे की तैयारी कर रहा था, जिसे २ जनवरी १९२० को खुलना था। हम लोग बचाव पक्ष से थे। चूँकि श्री एन. एन. सरकार मुकदमे की पैरवी कर रहे थे इसलिए उनके सहयोगी पं. मोतीलाल यदि कुछ देर से भी आते तब भी काम चल जाता। पंडित जी जनवरी में आए और अक्टूबर १९२० तक जब तक केस समाप्त नहीं हो गया आरा में ही रहे। मैं भी उनके साथ था। मुझे प्रतिदिन उनसे मुलाकात होती थी और कचहरी से निकलने के बाद में बिताये गये समय में जब हमें फुर्सत होती हम राजनीति पर चर्चा करते थे। हमारी चिंता भी बहुत बढ़ गई थी – रालेट ऐक्ट और जलियांवाला बाग की दुर्घटना के कारण हमने पाया कि वे न केवल एक ऊंचे दर्जे के वकील ही थे, बल्कि कठोर परिश्रम करने वाले व्यक्ति भी थे और अपने काम की भरपूर तैयारी किया करते थे। वे बड़े ही सूक्ष्म और तर्ककुशल वकील थे और उन्हें जमींदारी और तालुकदारी के बहुत से मुकदमों का अनुभव था। उन्हें पता था कि इन उलझे हुए मामलों से कैसे निपटा जाए।

तर्क करने में वे धीरे-धीरे आगे बढ़ते थे जिससे गवाह को यह भान न हो जाए कि उसके अपने ही उत्तरों से वह फंस रहा है। पंडित जी बहुत जल्दी गवाहों की मजबूरी और कमजोर चालों को भांप जाते थे।

मुझे एक दिलचस्प घटना याद हो आती है। उन दिनों एक महाराजा गवाही कक्ष में थे। वे बहुत दिनों तक पंडित जी के मुवक्किल रह चुके थे। लेकिन इस समय पंडित जी दूसरे पक्ष की ओर से तर्क कर रहे थे। महाराजा

कोर्ट में हाजिर नहीं हुए। हम लोगों को उनके महल में जाना पड़ा। काम शुरू होने से पहले महाराजा और पंडित जी में बड़ी घुलमिल कर बातें हुईं जैसा कि पुराने मित्रों में होती है। महाराजा को यह अनुमान हो गया कि पंडित जी उनके मित्र हैं और यद्यपि विरोधी पक्ष से वकील हैं, फिर भी उनका हित पंडित जी के हाथों सुरक्षित है।

दुर्भाग्यवश, महाराजा ने एक गलत बयान दे दिया था जो उनके ही एक पत्र से खंडित हो जाता था। यह पत्र उन्होंने किसी को लिखा था। लेकिन वे अपने मन में करीब-करीब निश्चिंत से थे कि यह पत्र विरोधी पक्ष को नहीं मिला होगा। पंडितजी को इस पत्र की खबर कहीं से लग गयी। परंतु पत्र उनके हाथ नहीं लगा। कहीं से उन्होंने महाराजा का 'इम्बोस्ड' लिफाफा प्राप्त कर लिया जिसे महाराजा व्यवहार में लाते थे। इस लिफाफे में कुछ नहीं था। लेकिन मोतीलाल जी ने जान बूझकर लिफाफे को अपनी ऊपर की जेब में इस तरह से रखा जिससे महाराजा उसे अच्छी तरह देख लें। लिफाफे को देखकर महाराजा भयभीत हो गए और उन्हें लगा कि मोतीलाल उनकी लिखी चिट्ठी को सामने रखकर पर्दाफाश कर देंगे।

जब पंडित जी बहस कर रहे थे तो वे बार-बार अपना हाथ अपनी जेब पर ले जाते थे और इस तरह की मुद्रा करते थे मानों अभी उन्होंने लिफाफा निकाला और महाराजा के सामने रखा जिससे महाराजा के झूठे बयान का पर्दाफाश तो जाएगा। मोतीलाल के इस प्रकार करने से महाराजा बुरी तरह घबरा कर टूट गए और उन्होंने अपने झूठे बयान का इकरार कर लिया। इसमें कुछ भी गलत या बेमानी नहीं था। कोई बेईमानी नहीं थी। पंडित मोतीलाल नेहरू ने एक भी शब्द नहीं कहा जिससे यह पता चल सके कि उनके पास यह पत्र था। लेकिन लिफाफे को जेब में रखने की उन्होंने जो चालाकी की उससे सारा भेद खुल गया।

जब पं. मोतीलाल बहस करते थे तो वे जानबूझकर धीरे-धीरे आगे बढ़ते थे और एक-एक दलील को इस तरह रखते थे जिसे काटना मुश्किल हो जाता था। वे कोई धाराप्रवाह भाषण देने वाले नहीं थे और न उनके भाषण से कार्ट चौंक जाता था। बल्कि वे धीरे-धीरे अपने केस को तैयार

करते थे और इस तरह मजबूत बना लेते थे कि उसको काटना मुश्किल हो जाता था। दूसरी तरफ बड़े-बड़े वकील थे जो अपनी कला में बहुत निपुण थे। यह मेरा सौभाग्य था कि देश का सभी बड़े वकीलों को एक साथ देखने का मौका मिला। यह एक संयोग की बात है कि यह मेरा अंतिम केस था, क्योंकि उसके बाद कलकत्ता में कांग्रेस ने असहयोग आंदोलन प्रस्ताव पास किया जिसके अनुसार लोगों को कोर्ट कचहरियों को बायकाट करना पड़ा।

कलकत्ता अधिवेशन एक तरह से आपात कालीन अधिवेशन था। देश में रालेट ऐक्ट और पंजाब में अत्याचारों के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन तेजी से सिर उठा रहा था। कांग्रेस की तरफ से पंडित मोतीलाल और देशबन्धु चितरंजन दास यह जांच कर रहे थे कि जलियांवाला बाग और उसके बाद पंजाब में लोगों पर क्या-क्या जुल्म ढाये गये। पंजाब के अत्याचारों के कारण ही असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ था। दूसरा कारण था खिलाफत आंदोलन, जिसने मुसलमानों की भावनाओं को अंग्रेजों के खिलाफ उभारा था। हिन्दू और मुसलमान दोनों महात्मा गांधी के नेतृत्व में खिलाफत आन्दोलन में अंग्रेजों का विरोध कर रहे थे। लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में कलकत्ता में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया था। आरा से ही पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरंजन दास इस अधिवेशन में उपस्थित होने के लिए गए। चूंकि श्री एन. एन. सरकार इस मुकदमे की पैरवी कर रहे थे, इसलिए ये दोनों व्यक्ति कुछ दिनों के लिए आरा से अनुपस्थित हो सकते थे। मैं अनुपस्थित नहीं हो सकता था, क्योंकि मैं इस मुकदमे में पंडित जी की मदद कर रहा था। उन्हीं दिनों श्री जवाहर लाल से मेरा परिचय हुआ। यद्यपि मैंने उनका नाम सुन रखा था, परंतु मैं सबसे पहले उन्हें आरा के रेलवे स्टेशन पर देखा। वे कलकत्ता जा रहे थे, कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए। संयोग से पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबंधु चितरंजन दास भी उसी ट्रेन से कलकत्ता जा रहे थे और उनकी मुलाकाल आरा स्टेशन पर जवाहर लाल नेहरू से हुई।

पंडित मोतीलाल नेहरू बडे ठाट-बाट से रहते थे। आरा में मैंने करीब दस महीने तक उन्हें इस ठाट-बाट से रहते देखा। वे कलकत्ता इसी शानो-शौकत से जा रहे थे। वे न केवल पहली श्रेणी में सफर करते थे बल्कि

सारा प्रथम श्रेणी का कम्पार्टमेन्ट अपने लिए रिजर्व करवा लेते थे। जलियांवाला वाग और पंजाव के अत्याचारों के बारे में जो जांच हो रही थी उसके सिलसिले में वे महात्मा गांधी के करीब आए थे। जहां तक मुझे पता है, वे मन से अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं हो पाये थे। चूँकि मैं कलकत्ता के अधिवेशन में उपस्थित नहीं था इसलिए मुझे ठीक से पता नहीं कि वह क्या बात थी जिसने मोतीलाल के विचार को बदल दिया और जिस कारण मोतीलाल जी ने महात्मा गांधी के प्रस्ताव का न केवल समर्थन किया वल्कि बाद में इसकी घोर वकालत भी की। मैंने उनके जीवन में बहुत बदलाव देखा और वे हर घड़ी यही बातें किया करते थे कि किस तरह असहयोग आंदोलन सफल हो। जब आरा का मुकदमा समाप्त हो गया तव वे इलाहावाद चले गये और मैं भी इस काम से मुक्त हो गया।

इसके कुछ दिनों के वाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बम्बई में एक मीटिंग हुई—कलकत्ता प्रस्तावों को मूर्तरूप देने के लिए। जब मैं पटना से चला तो मैंने देखा कि पंडित मोतीलाल नेहरू और जवाहर लाल उसी ट्रेन से जा रहे थे। उन दिनों मैं तीसरे दर्जे में सफर किया करता था – महात्मा गांधी के सम्पर्क में आने के पश्चात्। इसलिए बम्बई जाने के लिए मेरे पास तीसरे दर्जे का टिकट था। मोतीलाल जी ने प्रथम श्रेणी में सफर करना छोड़ दिया था और दूसरे दर्जे का टिकट ले लिया था। मैं उनसे प्लेटफार्म पर मिला और उन्होंने मुझ से पूछा कि मैं किस दर्जे में सफर कर रहा हूँ। मैंने उनसे कहा कि मैं तीसरे दर्जे में चल रहा हूँ। इस पर उन्होंने मुझसे कहा कि एक समझौता किया जाए। मैं पहले से दूसरे दर्जे में चला आया हूँ और तुम तीसरे से दूसरे दर्जे में चले आओ। इससे एक लाभ होगा कि हम सव एक साथ सफर कर सकेंगे। मैंने वैसा ही किया। पंडित जी को मैंने पूरी तरह वदला हुआ व्यक्ति पाया और वह वदलाव विल्कुल ही अचानक आया था। जव हम लोग उस डिव्वे में वैठकर वातें कर रहे थे तो मैंने देखा कि जवाहर लाल प्लेटफार्म से अपने डिव्वे की ओर जा रहे थे। वे तीसरे दर्जे में सफर कर रहे थे। पंडित जी मेरी ओर देखकर वोले – "इस लड़के को देखो, यह तुम्हारी तरह तीसरे दर्जे में सफर कर रहा है। यह वह समय है जव इसे जिंदगी का भरपूर आनंद उठाना चाहिए। परंतु इसने सुख, शान-शौकत सव कुछ

त्याग दिया है और साधु बन गया है।" मैंने तुरंत लगा कि मैं एक महापुरुष के समक्ष हूँ जिन्हें मैंने एक बहुत बड़े वकील के रूप में देखा था। परन्तु आज एक बहुत बड़े देशभक्त के रूप में देख रहा हूँ जिन्होंने अपने देश के लिए सब कुछ त्याग दिया है।

यह घनिष्ठ संबंध जो उस समय ट्रेन के डिब्बे में शुरू हुआ, जीवनभर बना रहा। उसके बाद अनेकों मौके आए जब मैं उनके सम्पर्क में आया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की सभाओं में वे जो भाषण देते थे उनमें बहुत कुछ कोर्ट में दिए हुए भाषण की गंध रहती थी। यदि उनके मन के अनुसार कोई बात नहीं होती तो वे कभी-कभी गुस्सा भी हो जाते थे।

असहयोग आन्दोलन में एक बात यह भी थी कि जो लोग कांग्रेस के सिद्धांतों को मानते थे उनसे कहा गया था कि वे न तो केन्दीय और न प्रांतीय विधानमण्डलों के लिए खड़े हों और न इनके लिए वोट दें। सन् १९२० के ऐक्ट के अनुसार जब चुनाव हुए तब तक असहयोग का प्रस्ताव पास हो गया था और अधिकांश कांग्रेजनों ने चुनाव में भाग नहीं लिया।

असहयोग आन्दोलन १९२०-२१ में बहुत उग्र हो गया और सरकार हर तरह से इसे कुचल देने की कोशिश करने लगी। फलस्वरूप हजारों कांग्रेजनों को चाहे वह पुरुष हों, चाहे स्त्री, जेल में डाल दिया गया।

सन् १९२२ के शुरू में महात्मा गांधी पर भी राजद्रोह के मामले में मुकदमा चला और उन्हें ६ वर्ष की सजा हुई। जैसे-जैसे नेताओं की सजा की अवधि समाप्त होती गयी, एक के बाद एक नेता जेल के छूटते गए और १९२२ के अंत में एक विवाद उठ खड़ा हुआ कि असहयोग आन्दोलन में थोड़ा परिवर्तन किया जाना चाहिए अथवा नहीं और विधानमण्डलों का बहिष्कार जारी रखना चाहिये अथवा नहीं। पूरा कांग्रेस दल दो दलों में बंट गया – पहला यथार्थवादी और दूसरा बदलाववादी। देशबन्धु चितरंजन दास और पं. मोतीलाल नेहरू बदलाववादी थे। दूसरी तरफ राजगोपालाचारी और सरदार वल्लभ भाई पटेल थे जो यथास्थिति को रखने के पक्ष में थे। दोनों दलों में गया में हुए कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में शक्ति परीक्षा हो गई जिसमें यथास्थिति वाले जीत गए। उसके बाद

देशबन्धु चितरजन दास और पं. मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस के अंदर ही एक पार्टी बनाई और उसका नाम स्वराज पार्टी रखा।

कुछ दिनों तक यह विवाद चलता ही रहा और बाद में जब गांधी जी जेल से आए तब सम्बद्ध पार्टी एक समझौते पर राजी हो सके।

यह एक संयोग की बात थी कि मैं यथास्थिति के पक्ष में था। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि किसी विवाद के कारण हम ऐसा काम कर गुजरते हैं जिसे ठंडे दिल से सोचने पर लगता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए था। यह विवाद भी बहुत कुछ इसी तरह का था। लेकिन चूँकि मैं दूसरे दल में था, पं. मोतीलाल जी का प्रेम मेरे प्रति कम नहीं हुआ और जब में उलटकर उन दिनों को देखता हूँ तो मुझे लगता है कि मोतीलाल जी किसने महान थे। बाद में जब कांग्रेस ने अपने सदस्यों को चुनाव लड़ने की अनुमति दी स्वराज पार्टी ने चुनाव लड़ा। पंडित जी ने मुझे कहा कि मैं स्वराज पार्टी के लोगों की मदद करूं जिससे वे जीत जाएं। पंडित जी के लिए जो कुछ श्रद्धा थी उसके कारण मैं उस काम में लग गया और मुझे इसमें सफलता भी मिली।

केन्द्रीय विधानसभा में पंडित मोतीलाल जी का काम बहुत ही सराहनीय था। उन्होंने न केवल कांग्रेस का वरन् विपक्ष के दूसरे दलों का भी सहयोग लिया था जो प्रमुख मुद्दे पर सरकार के खिलाफ उठ खड़े होते थे। परंतु चूंकि मैं विधानमसभा का सदस्य नहीं था, इसलिए इस बारे में वे लोग अच्छी तरह कह सकते हैं जो उसके सदस्य थे।

यह मेरा सौभाग्य था कि अवज्ञा आन्दोलन के दौरान मैं उनके साथ रहता था। जवाहरलाल, जो उन दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष थे, जेल में थे और मोतीलाल नेहरू को, जो जवाहर लाल के पहले कांग्रेस के अध्यक्ष बनाये गये थे, कुछ दिनों के लिए सरकार द्वारा जेल से छोड़ दिया गया था।

मोतीलाल जी ने एक बार फिर कांग्रेस अध्यक्ष का कार्य संभाला। श्री ओमप्रकाश को भी जो उन दिनों कांग्रेस के मंत्री थे, जेल में डाल दिया गया था और यह एक संयोग की बात थीं कि कुछ महीनों तक सरकार का ध्यान मुझ पर नहीं गया था। मैं मोतीलाल जी के निर्देशन में कांग्रेस का कार्य कर

रहा था। सप्ताह में दो-तीन दिन में मोतीलाल जी के साथ इलाहाबाद में बिताता था और शेष दिन बिहार का और अन्य स्थानों का दौरा करता था।

जब मोतीलाल जी कुछ महीनों तक जेल से बाहर रहे तो अंग्रेजी सरकार ने यह महसूस किया कि राष्ट्रीय आन्दोलन काबू में आ ही नहीं रहा है तो उन्होंने मोतीलाल जी को कैद कर दुबारा जेल में डाल दिया। जैसे ही मोतीलाल जी जेल में डाले गये, मैं समझ गया कि मेरा समय भी आ गया है और सचमुच तीन-चार दिनों के बाद मुझे भी जेल में डाल दिया गया।

लेकिन हम दोनों को केवल ६ महीने के लिए जेल में डाला गया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि जेल से निकल कर हम अपने कांग्रेस के काम में लग गए। हम उसके बाद उसी तरह कांग्रेस का काम करने लगे जैसे पहले करते थे। मोतीलाल जी का स्वास्थ्य बहुत तेजी से गिर रहा था। मैंने देखा कि वे रात-दिन परिश्रम कर रहे थे। प्रायः रात-रात भर जग जाते थे। सम्बद्ध कागजातों को पढ़ते थे। लोगों को आवश्यक निर्देश देते थे और पत्र लिखते थे।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, मैं सप्ताह के अधिक से अधिक दिन उनके साथ इलाहाबाद में रहता था और शेष दिन पटना और इलाहाबाद के बीच घूमता रहता था। मैंने देखा कि किस प्रकार उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे खराब हो रहा था और एक समय ऐसा आया जब यह लगने लगा कि अब मोतीलाल जी दुबारा से स्वास्थ्य लाभ नहीं कर पाएंगे। हर तरह के इलाज किये गये। कलकत्ता के एक प्रसिद्ध कविराज का भी इलाज हुआ। जब-जब डा. बी.सी. राय की आवश्यकता होती थी वे आकर मोतीलाल जी का इलाज करते थे। उन दिनों जवाहर लाल जी जेल में थे। लेकिन जैसे ही मोतीलाल जी की हालत गंभीर हो गई उन्हें जेल से छोड़ दिया गया। यह निर्णय हुआ कि उन्हें लखनऊ भेजा जाए। उस दिन तक मैं उन्हीं के साथ था। उस अवधि में भी मेरे बारबार मना करने के बावजूद वे कठोर परिश्रम कर रहे थे। पत्र लिख रहे थे, लोगों को आदेश दे रहे थे और आन्दोलन को जारी रखने के लिए जो कुछ भी संभव था, कर रहे थे। मुझे अभी भी वह दिन याद है जब तीसरे पहर इलाहाबाद से उन्हें लखनऊ ले जाया गया। मैं उसी शाम पटना लौट आया। दूसरे दिन मुझे पता चला कि मोतीलाल जी का स्वर्गवास हो गया

है मैं तुरंत इलाहाबाद लौट गया—उनकी स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिए।

यद्यपि मोतीलाल जी से मेरा सम्पर्क १९२० में शुरू हुआ और मैं केवल ११ वर्ष ही उनके सम्पर्क में रहा। यह मेरा सौभाग्य था कि मुझे बहुत करीब से पं. मोतीलाल नेहरू को जानने का मौका मिला ~ वकील के रूप में और एक महान देशभक्त के रूप में और मुझे यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं है कि इतने थोड़े समय में मुझे उनसे पितृवत प्यार मिला।

साभार
'मोतीलाल नेहरू
एसेज एण्ड रिफलेक्शंस आन हिज लाइफ एण्ड टाइम्स'

"पंडित मोतीलाल नेहरू — जैसा मैंने उन्हें जाना

डा० गोविन्ददास

भारत के आधुनिक युग में राजनैतिक क्षेत्र के व्यक्तियों में व्यक्तित्व की दृष्टि से शायद पं. मोतीलाल नेहरू से बड़ा व्यक्तित्व और कोई नहीं हुआ। एक तो निसर्ग ने ही उन्हें भव्य बनाया था, दूसरे उस भव्यता में जिन भव्य बातों का समावेश हो गया था उसके कारण उनके व्यक्तित्व में यह उक्ति चरितार्थ हो गयी थी कि "सोने में सुगंधि" का मिश्रण हुआ है।

पंडित जी न बहुत ऊँचे थे और न बहुत ठिगने ही। अवस्था के बढ़ाव के साथ शरीर की स्थूलता भी कुछ बढ़ी थी, पर उसमें बहुत भद्दापन न आ पाया था। वे अपने सत्तरवें वर्ष स्वर्ग सिधारे। परन्तु अन्तिम कुछ वर्षों को छोड़कर वृद्धावस्था तक व्यायाम करते रहे। यही कारण था कि शरीर में स्थूलता आने पर भी भद्दापन न आ सका। कश्मीरी गौर वर्ण के होते ही हैं,

अतः पंडित जी का वर्ण गौर था। और उस गोरे रंग को बुढ़ापे के कारण श्वेत हो गये केश और भी गोरा बना रहे थे। जवाहर लाल जी के सदृश मोतीलाल जी के सिर के बाल नहीं झड़े थे। इस अवस्था में भी वे संवारे हुए बाल रखते थे। सन् १९२६ तक उनके मूंछें भी थीं और मूंछें छोटी या खसखसी नहीं, खूब बड़ी तथा दोनों ओर की नोकें एकदम ऊपर उठी हुई। मुझे तो उनका मूंछों से युक्त आनन मूँछों से रहित मुख की अपेक्षा कहीं अधिक भव्य जान पड़ता था। और मुझे ही क्यों, जब सन् १९२६ में उन्होंने मूंछें निकाल दीं तब शिमले में केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के अधिवेशन के समय शिमले की नारियों की ओर से एक शिष्टमण्डल उनसे इसीलिए मिला कि वे अपनी मूँछों से पुनः सहयोग करें। असहयोग के समय पंडित जी ने अपनी पश्चिमी वेशभूषा को छोड़ खादी का कुरता और धोती धारण करना आरम्भ किया। उस समय खादी बहुत अच्छी तो नहीं मिलती थी, परन्तु जो अच्छी से अच्छी खादी प्राप्त थी उस खादी के उनके वस्त्र होते थे। सन् १९२३ में स्वराज पार्टी के नेता के रूप में उन्होंने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में प्रवेश किया तब उनकी असहयोग वाली वेशभूषा भी उसी प्रकार बदल गयी जिस प्रकार असहयोग में आते ही पश्चिमी ढंग की वेशभूषा बदली थी। अब उन्होंने शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा पहनना प्रारम्भ किया जो वेशभूषा उनकी अंत तक चलती रही।

मोतीलाल जी में शाही शान और बुद्धिवादियों की शान दोनों का अनोखा मिश्रण था। वे अपने जमाने में प्रयाग के हाई कोर्ट के दो सर्वोच्च वकीलों में थे। उस समय प्रयाग के हाई कोर्ट में सर सुन्दरलाल और पंडित मोतीलाल सर्वोच्च वकील माने जाते थे। दोनों की ही अन्धाधुन्ध आमदनी थी। पर अन्तर यह था कि सुन्दरलाल जी अपनी आय का एक-एक पैसा संग्रह करते थे और मोतीलाल जी उसे दोनों हाथों से उलीचते थे। आनन्द भवन की क्या रहन-सहन थी। शायद बड़े से बड़े राजा-महाराजाओं की भी वैसी नहीं। इस रहन-सहन के कारण एक कहावत-सी मशहूर हो गयी थी कि मोतीलाल जी के कपड़े पेरिस से धुलकर आते हैं। उनके असहयोग में सम्मिलित होने के पश्चात् उनके त्याग का जो वर्णन किया जाता था उस वर्णन में यह बात अवश्य कही जाती थी। एक बार जब मैंने उनसे इस सम्बन्ध में पूछा तब वे जोर से हँस पड़े और उन्होंने उसका जो उत्तर दिया

थे। दरबार के अवसर पर दोनों की कैसी वेशभूषा थी इसका मुझे अब तक वैसा का वैसा स्मरण है। पिता जी की पूर्वी ढंग की पोशाक थी– अंगरखा, उस पर सुनहरी काम का चोगा, चूड़ीदार पाजामा, सिर पर पगड़ी, पगड़ी पर जड़ाऊ सिरपेच और गले में हीरे–मोती के कण्ठे। मोतीलाल जी का दरबारी वेश पश्चिमी था। सिर पर विशेष प्रकार की बाल लगी हुई किश्तीनुमा टोपी, आगे का कटा हुआ छोटा कोट, घुटने पर बटनवाला चुस्त पाजामा और घुटने तक सफेद मोजे, एक विशेष प्रकार के बकल वाले जूते, कमर में कमरपट्टा और बाईं तरफ क्रिच। मेरा जब पिता जी ने उनसे परिचय कराया, तब बड़े प्रेम से उन्होंने मुझे हृदय से लगाया।

इसके बाद मैंने उनके दर्शन सन् १९२० में किये, जब वे नागपुर कांग्रेस में जबलपुर होकर जा रहे थे। जो स्नेह मेरे प्रति उनका मैंने १९११ में देखा था, वही स्नेह इस बार भी। अब मैं युवक हो गया था, पर युवक होते हुए भी उन्होंने फिर एक बच्चे के सदृश मुझे हृदय से लगाया और इसके बाद तो मेरा उनका इसलिए निकट का सम्बंध हो गया कि उसके बाद मैं भी कांग्रेस में आ गया।

प्रयाग से नागपुर जाते हुए जबलपुर में वे सकुटुम्ब हमारे ही मेहमान हुए और फिर हमारी ही मोटरों पर नागपुर गये। उसी समय मैंने सर्वप्रथम जवाहरलाल जी के तथा उनके अन्य कुटुम्बियों के दर्शन किये। मैंने उनका जो स्नेह प्राप्त किया वह उनके स्वर्गारोहरण तक वैसा का वैसा मुझे प्राप्त रहा। राजनैतिक क्षेत्र में मेरा किसी भी राजनैतिक नेता से इतना निकटतम सम्बंध नही रहा जितना मोतीलाल जी से। वे राजनैतिक क्षेत्र में मेरे सभी कुछ रहे। मेरे राजनैतिक क्षेत्र में आने का पंडित जी ने हार्दिक स्वागत किया, मेरे इस क्षेत्र में आने से मेरे पिता जी को जो भय और उद्विग्नता थी उसमें भी पंडित जी के कारण कुछ कमी हुई। स्वराज पार्टी में भी मैं मोतीलाल जी के कारण ही आया और जब सन् १९२३ में स्वराज पार्टी का संगठन हुआ उस समय उन्हीं ने मुझे अखिल भारतीय स्वराज पार्टी का कोषाध्यक्ष नियुक्त किया। पंडित जी का मेरे प्रति कितना स्नेह था उसे जबलपुर की जनता ने भी एक घटना से जाना। जब सन् १९३० में मैं पहली बार गिरफ्तार हुआ उस समय जवाहरलाल जी के भी गिरफ्तार हो जाने पर,

वह मुझे अब तक याद है। उन्होंने कुछ इस प्रकार कहा था – "पेरिस कपड़े भेजकर उन्हें मंगाने में उतना ही खर्च पड़ता है जितना नये कपड़े बनाने में। इस दुनिया में हमेशा एक बात देखी जाती है कि जब हम किसी की बुराई पर उतरते हैं तब उसकी कोई हद नहीं रखते। झूठी-सच्ची न जाने कितनी बातें उसकी बुराई में कहा करते हैं। यही बात तारीफ के मुताल्लिक हुआ करती है। जब हम किसी की तारीफ या कुर्बानी का जिक्र करते हैं तब उसकी भी कोई हद नहीं रखते।" उनकी शाही शान का जो उनके जीवन पर कोई बुरा असर नहीं पड़ा, यह शायद इसलिए भी कि वे असहयोग में सम्मिलित हो गये, परन्तु उनकी बुद्धिवादी शान का उनके जीवन पर कुछ बुरा असर भी पड़े बिना नहीं रहा। दूसरों को तुच्छ समझना, बड़े से बड़े शान-सम्पन्न व्यक्ति का भी, यदि वह उनसे विरूद्ध राय रखता हो तो, अपमान कर देना, या उसकी खिल्ली उड़ा देना इत्यादि बातें जो उनके जीवन में दिख पड़ती थीं, उनका एक कारण उनकी बुद्धिवादी शान भी थी। निसर्ग से उन्हें प्रखर स्वभाव मिला था। यह इसका कारण न हो यह नहीं, पर बुद्धिवादी शान भी इसका एक कारण थी। मोतीलाल जी के जो अनेक विरोधी थे उसकी यही वजह थी।

मोतीलाल जी हमारे कुटुम्ब के वकील थे। जबलपुर से इलाहाबाद बहुत निकट होने के कारण हमारे यहां के सभी छोटे–बड़े मामले कानूनी राय के लिए उनके पास जाते थे। चूँकि हमारे घर का काफी बड़ा कारबार था इसलिए ये मामले भी काफी हुआ करते थे। इसके सिवा मेरे पिता जी को और उनकी बहुत निकट की मैत्री थी। इसका कारण यह था कि अपने समय में जिस प्रकार मोतीलाल जी बहुत बड़े शौकीनों में थे, उसी प्रकार मेरे पिता जी भी। पिता जी तो अनेक बार उनसे भेंट के लिए इलाहाबाद जाते थे, पर असहयोग आन्दोलन के पहले मैंने पंडित जी को जबलपुर आते कभी नहीं देखा।

सबसे पहले मैंने पंडित जी के दर्शन सन् १९११ के दिल्ली–दरबार में किये। मैं पिता जी के साथ उस दरबार में गया था। पिता जी मध्य प्रदेश के सबसे बड़े मालगुजार होने के कारण एक दरबारी के रूप में उस दरबार में गये थे और मोतीलाल जी भी एक दरबारी के रूप में ही उस दरबार में गये

वह मुझे अब तक याद है। उन्होंने कुछ इस प्रकार कहा था – "पेरिस कपड़े भेजकर उन्हें मंगाने में उतना ही खर्च पड़ता है जितना नये कपड़े बनाने में। इस दुनिया में हमेशा एक बात देखी जाती है कि जब हम किसी की बुराई पर उतरते हैं तब उसकी कोई हद नहीं रखते। झूठी-सच्ची न जाने कितनी बातें उसकी बुराई में कहा करते हैं। यही बात तारीफ के मुताल्लिक हुआ करती है। जब हम किसी की तारीफ या कुर्बानी का जिक्र करते हैं तब उसकी भी कोई हद नहीं रखते।" उनकी शाही शान का जो उनके जीवन पर कोई बुरा असर नहीं पड़ा, यह शायद इसलिए भी कि वे असहयोग में सम्मिलित हो गये, परन्तु उनकी बुद्धिवादी शान का उनके जीवन पर कुछ बुरा असर भी पड़े बिना नहीं रहा। दूसरों को तुच्छ समझना, बड़े से बड़े शान-सम्पन्न व्यक्ति का भी, यदि वह उनसे विरूद्ध राय रखता हो तो, अपमान कर देना, या उसकी खिल्ली उड़ा देना इत्यादि बातें जो उनके जीवन में दिख पड़ती थीं, उनका एक कारण उनकी बुद्धिवादी शान भी थी। निसर्ग से उन्हें प्रखर स्वभाव मिला था। यह इसका कारण न हो यह नहीं, पर बुद्धिवादी शान भी इसका एक कारण थी। मोतीलाल जी के जो अनेक विरोधी थे उसकी यही वजह थी।

मोतीलाल जी हमारे कुटुम्ब के वकील थे। जबलपुर से इलाहाबाद बहुत निकट होने के कारण हमारे यहां के सभी छोटे—बड़े मामले कानूनी राय के लिए उनके पास जाते थे। चूँकि हमारे घर का काफी बड़ा कारबार था इसलिए ये मामले भी काफी हुआ करते थे। इसके सिवा मेरे पिता जी को और उनकी बहुत निकट की मैत्री थी। इसका कारण यह था कि अपने समय में जिस प्रकार मोतीलाल जी बहुत बड़े शौकीनों में थे, उसी प्रकार मेरे पिता जी भी। पिता जी तो अनेक बार उनसे भेंट के लिए इलाहाबाद जाते थे, पर असहयोग आन्दोलन के पहले मैंने पंडित जी को जबलपुर आते कभी नहीं देखा।

सबसे पहले मैंने पंडित जी के दर्शन सन् १९११ के दिल्ली—दरबार में किये। मैं पिता जी के साथ उस दरबार में गया था। पिता जी मध्य प्रदेश के सबसे बड़े मालगुजार होने के कारण एक दरबारी के रूप में उस दरबार में गये थे और मोतीलाल जी भी एक दरबारी के रूप में ही उस दरबार में गये

थे। दरबार के अवसर पर दोनों की कैसी वेशभूषा थी इसका मुझे अब तक वैसा का वैसा स्मरण है। पिता जी की पूर्वी ढंग की पोशाक थी— अंगरखा, उस पर सुनहरी काम का चोगा, चूड़ीदार पाजामा, सिर पर पगड़ी, पगड़ी पर जड़ाऊ सिरपेच और गले में हीरे—मोती के कण्ठे। मोतीलाल जी का दरबारी वेश पश्चिमी था। सिर पर विशेष प्रकार की बाल लगी हुई किश्तीनुमा टोपी, आगे का कटा हुआ छोटा कोट, घुटने पर बटनवाला चुस्त पाजामा और घुटने तक सफेद मोजे, एक विशेष प्रकार के बकल वाले जूते, कमर में कमरपट्टा और बाईं तरफ क्रिच। मेरा जब पिता जी ने उनसे परिचय कराया, तब बड़े प्रेम से उन्होंने मुझे हृदय से लगाया।

इसके बाद मैंने उनके दर्शन सन् १९२० में किये, जब वे नागपुर कांग्रेस में जबलपुर होकर जा रहे थे। जो स्नेह मेरे प्रति उनका मैंने १९११ में देखा था, बड़ी स्नेह इस बार भी। अब मैं युवक हो गया था, पर युवक होते हुए भी उन्होंने फिर एक बच्चे के सदृश मुझे हृदय से लगाया और इसके बाद तो मेरा उनका इसलिए निकट का सम्बंध हो गया कि उसके बाद मैं भी कांग्रेस में आ गया।

प्रयाग से नागपुर जाते हुए जबलपुर में वे सकुटुम्ब हमारे ही मेहमान हुए और फिर हमारी ही मोटरों पर नागपुर गये। उसी समय मैंने सर्वप्रथम जवाहरलाल जी के तथा उनके अन्य कुटुम्बियों के दर्शन किये। मैंने उनका जो स्नेह प्राप्त किया वह उनके स्वर्गारोहरण तक वैसा का वैसा मुझे प्राप्त रहा। राजनैतिक क्षेत्र में मेरा किसी भी राजनैतिक नेता से इतना निकटतम सम्बंध नही रहा जितना मोतीलाल जी से। वे राजनैतिक क्षेत्र में मेरे सभी कुछ रहे। मेरे राजनैतिक क्षेत्र में आने का पंडित जी ने हार्दिक स्वागत किया, मेरे इस क्षेत्र में आने से मेरे पिता जी को जो भय और उद्विग्नता थी उसमें भी पंडित जी के कारण कुछ कमी हुई। स्वराज पार्टी में भी मैं मोतीलाल जी के कारण ही आया और जब सन् १९२३ में स्वराज पार्टी का संगठन हुआ उस समय उन्हीं ने मुझे अखिल भारतीय स्वराज पार्टी का कोषाध्यक्ष नियुक्त किया। पंडित जी का मेरे प्रति कितना स्नेह था उसे जबलपुर की जनता ने भी एक घटना से जाना। जब सन् १९३० में मैं पहली बार गिरफ्तार हुआ उस समय जवाहरलाल जी के भी गिरफ्तार हो जाने पर,

मोतीलाल जी कांग्रेस के सभापति थे। वे मेरी गिरफ्तारी पर स्वंय जबलपुर आये। जबलपुर में मेरी गिरफ्तारी के बाद सत्याग्रह एकदम धीमा पड़ गया था। पंडित जी ने जबलपुर के कांग्रेस कार्यकर्ताओं की खूब भर्त्सना की और सार्वजनिक सभा में कहा कि "मैं अपने दो लड़के मानता हूँ– एक जवाहरलाल और दूसरा गोबिन्ददास।"

सन् १९२० के अन्त में कांग्रेस में आने के बाद मैं मोतीलाल जी के इतने निकट सम्पर्क में रहा कि उस समय के राजनैतिक क्षेत्र मेंउनका कैसा अद्वितीय स्थान था वह जिन गिनती के लोगों को व्यक्तिगत अनुभव से ज्ञात है उनमें से मैं भी अपने को एक मानता हूँ।

सार्वजनिक क्षेत्र में आने वाले चोटी के कार्यकर्त्ता और नेता दो प्रकार के रहे हैं– एक जिन्होंने अल्प अवस्था में ही सार्वजनिकजीवन में प्रवेश किया, जैसे लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, महामना मालवीय, पंडित जवाहरलाल नेहरू, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस आदि और दूसरे वे जो अपने-अपने जीवन निर्वाह के क्षेत्र में ऊंचे से ऊंचे स्तंर पर पहुंचने के पश्चात् सार्वजनिक क्षेत्र में आये, जैसे पं मोतीलाल नेहरू, श्री भूलाभाई देसाई आदि। मोतीलाल जी का इलाहाबाद हाई कोर्ट में जो उच्चतम स्थान था उसने उन्हें देश में भी इस क्षेत्र का एक उच्चतम व्यक्ति बना दिया था। वे सन् १९१८ के पंजाब हत्या काण्ड के समय अपनी परिपक्व अवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र में आये। कुछ लोगों का मत है कि यह पं.जवाहर लाल नेहरू के कारण हुआ। जो कुछ हो, चूंकि वे देश के एक उच्चतम व्यक्ति मानें जाते थे, अतः सार्वज़निक क्षेत्र में आते ही पिछले जीवन में कोई महत्वपूर्ण सेवा न रहते हुए भी उनका राजनैतिक क्षेत्र में एक उच्चतम स्थान हो गया। पंजाब की हत्या कांड की जांच के लिए कांग्रेस ने जो समिति नियुक्त की उनमें मोतीलाल जी भी एक सदस्य थे और मोतीलाल जी का पिछला शाही जीवन होते हुए भी पंजाब की भीषण गर्मी में उन्होंने जिस कठिन परिश्रम से उस जांच के कार्य में योग दिया उसके कारण कांग्रेस का जो अधिवेशन सन् १९१९ में अमृतसर में हुआ उसके वे सभापति चुने गए। उसके बाद ही असहयोग आंदोलन आ गया। सन् १९२० के सितम्बर में कलकत्ता में जो कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ और जिसमें गांधी जी का असहयोग का

कार्यक्रम स्वीकृत हो एक प्रकार से गांधी जी को देश के नेतृत्व की बागडोर दी गयी, क्योंकि उस समय लोक मान्य तिलक का निधन हो गया था, उस अवसर पर उच्चतम नेताओं में मोतीलाल जी पहले व्यक्ति थे जिन्होंने गांधी जी के अनुसरण की घोषणा की। इस प्रकार सन् १९१८ से १९३० तक यद्यपि बारह वर्ष के केवल एक युग में ही मोतीलाल जी का प्रधान कार्य सीमित रहा, क्योंकि सन् १९३० में ही उनका देहावसान हो गया, परन्तु अपने एक युग के कार्य के कारण मोतीलाल जी का उस युग में जो स्थान बना वह केवल गांधी जी से द्वितीय था, देशबंधु की सन् १९२५ में मृत्यु के बाद, अन्य सब नेताओं से ऊंचा। इस बीच सन् १९२६ से १९२९ तक लगभग चार वर्ष का तो ऐसा समय भी आया जब मोतीलाल जी ने गांधी जी को साबरमती में बिठा दिया था और गांधी जी के रहते हुए भी चार वर्ष तक देश का नेतृत्व किया था। इसका एक कारण और भी था--जवाहरलाल जी की वजह से बापू का जितना निकट संबध नेहरू कुटुम्ब से रहा उतना अन्य किसी से नहीं।

अपने एक युग के सार्वजनिक जीवन के क्षेत्र का पंडित मोतीलाल जी का कार्य दो प्रधान विभागों में बांटा जा सकता है। एक सन् १९२० और १९३० के असहयोग तथा सत्याग्रह आंदोलनों का कार्य, जो उन्होंने गांधी जी के नेतृत्व में किया और दूसरा सन् १९२४ से १९२९ तक का कार्य जो उन्होंने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में स्वराज दल और कांग्रेस दल के नेता के रूप में किया। दोनों ही विभागों के उनके कार्य का ऐतिहासिक महत्व है। पर पहले विभाग के नेता रहे गांधी जी, मोतीलाल जी का नेतृत्व दूसरे विभाग के कार्य में रहा है।

केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में वे स्वराज दल और कांग्रेस दल के नेता ही न थे वरन् कांग्रेस के सबसे बड़े दल होने के कारण विरोधी दल के भी नेता थे। उस समय की केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में देश के कुछ महान् नेताओं को छोड़ जैसे गांधी जी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री वल्लभभाई पटेल, पं. जवाहरलाल नेहरू, श्री सुभाषचन्द्र बास, डा. राजेन्द्र प्रसाद, श्री राजगोपालाचारी इत्यादि। शेष सारे गणमान्य नेता केन्द्रीय व्यस्थापिका सभा में पहुंच गये थे। इनमें प्रमुख थे महामना पं. मदनमोहन मालवीय,

लाला लाजपत राय, श्री श्रीनिवास आयंगर, श्री मुहम्मद अली जिन्ना, श्री विट्ठलभाई पटेल, श्री जयकर आदि। अंग्रेज सरकार के भी बड़े-बड़े लोग वहां मौजुद थे। बहस का स्तर बड़ा ऊंचा था। साधारण बात कहने की अपेक्षा लोग चुप रहना ही श्रेयस्कर मानते थे। मैं भी सन् १९२३ में ही केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में चला गया था।

जो भारतीय नेता केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में थे उनमें पं. मोतीलाल जी का स्थान सबसे ऊंचा था। यह इसलिए नहीं कि वे वहां के सबसे अच्छे वक्ता थे। उस समय की केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में कई वक्ता मोतीलाल जी से अच्छे थे। परन्तु जो व्यक्तित्व मोतीलाल जी का था वह अन्य किसी का नहीं। फिर वे कांग्रेस दल के नेता थे जो दल अन्य सभी दलों से बड़ा था। पर उस समय की केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में मोतीलाल जी का सर्वोच्च स्थान होने पर भी कांग्रेस दल में उनके अनेक कट्टर विरोधी भी थे। यह उनके प्रखर स्वभाव और बुद्धिवादी शान के कारण, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। लेकिन पंडित जी इसकी तनिक भी परवाह न करते थे।

कांग्रेस दल में उनके विरोध का कुछ व्यक्तियों के साथ उनका व्यवहार भी अनेक बार बड़ा कारण हो जाता था। यह उनके उसी प्रखर स्वभाव और बुद्धिवादी शान की वजह से। इस संबंध में भी अनेक घटनाएं हो जाया करती थीं। दृष्टांत के लिए एक घटना लिख रहा हूँ। कांग्रेस दल के उस समय मंत्री थे उड़ीसा के श्री नीलकण्ठदास। नीलकण्ठदास की रहन-सहन में स्वच्छता का थोड़ा अभाव रहा करता था। एक दिन शिमले में वे पंडित जी से मिलने पहुंचे। मैं भी वहीं था, नीलकण्ठदास जी पंडित जी के निकट की कुर्सी पर बैठ गये। नीलकण्ठदास जी के कुछ लम्बी—सी दाढ़ी थी। कुछ ही देर बाद नाक सिकोड़ते हुए पंडित जी बोले, "नीलकण्ठदास, कभी-कभी दाढ़ी में साबुन लगा लिया करो, बदबू आ रही है तुम्हारी दाढ़ी से।"

मोतीलाल जी अनेक बार ऐसी बातों का परिमार्जन भी करने का प्रयत्न करते थे, जैसा जवाहरलाल जी किया करते हैं।

मुझ पर पंडित जी का जैसा स्नेह था उसका कुछ वर्णन ऊपर आ गया है। पर उनके प्रखर स्वभाव के कारण एक बार मुझसे भी उनका एक छोटा सा झगड़ा हो गया। स्वराज पार्टी सन् १९२४ में व्यवस्थापिका सभाओं में पहुंची थी। गांधी जी उस समय जेल में थे। सन् १९२४ में गांधीजी अपेण्डीसाइटिस के आपरेशन के कारण जेल से छूटे और जब वे बम्बई के निकट जूहू में स्वास्थ्य–लाभ कर रहे थे उस समय देशबन्धुदास और मोतीलाल जी स्वराज पार्टी के कार्य के लिए बापू का आशीर्वाद लेने जुहू पहुंचे। कांग्रेस के कार्यक्रम पर समझौता न हो पाने के कारण गांधी जी का उस समय स्वराज पार्टी को समर्थन प्राप्त न हो सका और देशबन्धु तथा मोतीलाल जी जुहू से लौट आये। उसी समय भारत के इस्पात उद्योग को सहायता देने के लिए एक विधेयक पर विचार करने को केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का एक विशेष अधिवेशन शिमला में बुलाया गया। पंडित जी शिमला पहुंचे और हम लोग भी। उस समय स्वराज दल के लोग गांधी जी से अप्रसन्न हो गये थे। पंडित जी भी गांधी जी से प्रसन्न नहीं थे। नागपुर के डाक्टर मुंजे ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया कि मध्य प्रदेश में इस समय कोई भी कांग्रेसजन गांधीजी का अनुसरण करने को तैयार नहीं है। मैं यद्यपि स्वराज दल की ओर से केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का सदस्य था और मोतीलाल जी से मेरा निकटतम संबंध भी था, परन्तु मैं राजनैतिक क्षेत्र में आया तो था गांधी जी से प्रेरित हो कर। अतः मैंने डा़ मुंजे के इस वक्तव्य का खण्डन कर एक दूसरा वक्तव्य निकाला कि डाक्टर मुंजे मध्य प्रदेश में नागपुर अथवा मराठी भाषा–भाषी क्षेत्र के लिए चाहे कुछ कहने का अधिकार रखते हों, पर मध्य प्रदेश के हिन्दी भाषा–भाषी क्षेत्र में आज भी गांधी जी का वैसा ही अनुसरण है जैसा पहले था। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की बैठक का अधिवेशन जिस दिन समाप्त हुआ उसके दूसरे दिन मेरा यह वक्तव्य पत्रों में निकला। गर्मी का मौसम था, अतः शिमला से हम लोग कुछ दिन के लिए सोलन आए। पंडित जी भी सोलन आये और पटना के श्री डाक्टर सच्चिदानन्द सिंह की सोलन की कोठी में ठहरे। सदा के समान मैं वहां पंडित जी से मिलने गया। लिखने की मेज के सामने कुर्सी पर बैठे हुए पंडित जी कुछ लिख रहे थे। मेरे पहुंचने पर मुझे आंख उठा कर देख तो लिया, पर न मेरे प्रणाम का उत्तर दिया और न मुझे बैठने को ही कहा। मैं बड़ी असमंजस में चुपचाप खड़ा रहा क्योंकि पंडित जी ने तब तक कभी भी

मुझ से वैसा व्यवहार न किया था। कुछ देर बाद जब पंडित जी का लिखना समाप्त हुआ तब पास में रखे हुए एक अखबार को जोर से जमीन पर पटकते हुए अत्यधिक क्रोध से पंडित जी ने कुछ इस प्रकार कहा – "यह आपका स्टेटमेण्ट है, सी.पी.क्या हिन्दुस्तान भर में इस वक्त गांधी जी के साथ कोई नहीं है। मैं इस बात को बिल्कुल बेजा समझता हूँ कि स्वराज पार्टी के दो मेम्बर एक-दूसरे के खिलाफ इस तरह स्टेटमैण्ट करें।" इसके पहले पंडित जी ने कभी मुझसे 'तुम' के सिवा 'आप' नहीं कहा था। वे फिर से कुछ लिखने में लग गये। मैं कुछ देर तक तो खड़ा रहा फिर उन्हें प्रणाम कर लौट पड़ा। न उन्होंने मेरे प्रणाम का उत्तर दिया और न मुझे रोका ही। उस दिन मैं जितना क्षुब्ध और दु:खी था उतना जीवन में शायद कम बार रहा होऊँगा। पंडित जी दूसरे ही दिन सोलन छोड़ रहे थे। मेरा भी सोलन में मन न लगा और मैं भी जबलपुर लौट आया। जबलपुर लौटते ही मैंने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा से, स्वराज दल के कोषाध्यक्ष पद से और स्वराज दल की सदस्यता से त्यागपत्र लिखकर रजिस्ट्री से पंडित जी को भेज दिया। व्यवस्पापिका सभा से वाइसराय को सीधा इस्तीफा तो मैं स्वराज दल के सदस्य होने के कारण भेज न सकता था, वह नेता के मार्फत ही भेजा जा सकता था। मध्य प्रदेश की विधान सभा में और बंगाल की विधान सभा में उस समय स्वराज दल का बहुमत था और स्वराज दल के उस समय के कार्यक्रम के अनुसार उस समय भारत वर्ष में केवल इन्हीं दो प्रदेशों में मंत्रिमण्डल नहीं बने थे। बंगाल की विधानसभा में देशबन्धुदास स्वराज दल के नेता के रूप में स्वयं मौजूद थे। मध्य प्रदेश की विधान सभा के स्वराज दल का काम देखने कभी-कभी पंडित जी नागपुर जाया करते थे। उनका जाना जबलपुर होकर होता था। वे प्रयाग से जबलपुर आते थे। उस समय गोविन्द भवन नामक हमारी जो एक कोठी थी, वहीं ठहरते थे और हमारी मोटर में ही नागपुर जाकर वापस जबलपुर लौट प्रयाग चले जाते थे। सोलन से मेरे जबलपुर पहुँचने के कुछ ही दिन बाद पंडित जी का तार मिला कि वे जबलपुर आ रहे हैं। मैंने सोचा कि पंडित जी नागपुर जा रहे होंगे। अत:, उनके जबलपुर में ठहराने और नागपुर जाने की सारी व्यवस्था कर मैं उन्हें लेने के लिए स्टेशन पहुंचा। चाहे मैंने उपर्युक्त इस्तीफे भेज दिये हों, पर पंडित जी जबलपुर आयें, मुझे तार दें और मैं उनकी सारी व्यवस्था न करूँ, यह कैसे सम्भव था। ज़ब ट्रेन जबलपुर स्टेशन पर पहुँची, पंडित जी अपने

फर्स्ट क्लास के डब्बे के फाटक पर खड़े हो गये। मैंने प्रणाम किया। उस प्रणाम के उत्तर में जो कुछ उन्होंने कहा वह अब भी मुझे जैसा का तैसा याद है। वे बोले – "मुझे देखकर भी तुम्हारी खफगी दूर हुई या नहीं?" मेरी खफगी दूर नहीं हुई थी। अतः मैंने उनसे कुछ इस प्रकार कहा – "पंडित जी, अभी तो आप चाय लेकर नागपुर हो आइए। लौटने पर बातें करूंगा।" पंडित जी ने तुरंत कहा – "मैं नागपुर जाने के लिए नहीं आया हूँ।" मैंने आश्चर्य से केवल एक अक्षर कहा – "तो?" भावुक व्यक्ति हूँ। मेरी आँखों में आँसू आ गये। पंडित जी ने अपने डिब्बे से उतर सदा के समान मुझे हृदय से लगाया और मेरे इस्तीफे को वहीं फाड़कर फेंक दिया। उस दिन, दिन भर पंडित जी जबलपुर रहे। मेरे पिता जी से मिले और मेरी बड़ी लम्बी-चौड़ी शिकायत उनसे कर यह कहा कि "क्या मुझे गोविन्ददास पर नाराज होने का हक नहीं है?" रात को वे वापस प्रयाग लौट गये।

सन् १९२६ के चुनावों के बाद किसी भी प्रान्त में कांग्रेस का बहुमत नहीं हो पाया। केन्द्र में पं मोतीलाल जी करीब-करीब उतने ही सदस्यों को लेकर पहुंचे जितने सन् १९२३ के चुनाव में लेकर गये थे। इस बार मद्रास में एक नये व्यक्तित्व का उदय हुआ था। ये थे एस.श्रीनिवास आयंगर। कांग्रेस के कानपुर अधिवेशन के बाद गोहाटी में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसके श्री आयंगर ही सभापति हुए थे। मद्रास से इस चुनाव में केन्द्रीय असेम्बली के लिए कांग्रेस की ओर से जो व्यक्ति खड़े किये गये थे उनमें अधिकतर सफल हुए थे। इसका श्रेय बहुत हद तक श्री आयंगर को था।

इस चुनाव के बाद केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेस दल की जो पहली बैठक दल के पदाधिकारियों के चुनने के लिए हुई उसमें एक बड़ी दिलचस्प घटना थी। चूँकि श्री श्रीनिवास आयंगर उस समय कांग्रेस के सभापति थे और दक्षिण भारत के सबसे प्रधान व्यक्ति, इसलिए उनके मन में मोतीलाल जी को नेतृत्व से हटा स्वयं कांग्रेस दल के नेता होने की महत्वाकांक्षा की उत्पत्ति हुई। उन्होंने अपने पक्ष में कुछ सदस्यों का एक गुट बनाया और इसके प्रमुख वक्ता चुने गये बिहार के एक मुस्लिम सदस्य श्री शकी दाउदी।

पदाधिकारियों के चुनाव के लिए कांग्रेस दल की इस बैठक में केन्द्रीय

असेम्बली के सदस्यों के साथ कौंसिल आफ स्टेट के सदस्य भी दल के संविधान के अनुसार उपस्थित थे। मैं भी था। उस समय जो कुछ हुआ, वह आज भी मुझे जैसा का तैसा याद है।

श्री शफी दाउदी साहब ने कुछ इस प्रकार कहा – "कांग्रेस पार्टी का लीडर और दूसरे ओहदेदार भी ऐसे शख्स होने चाहिएँ जो गांधी जी के तमाम उसूलों पर अमल करते हों, शराब न पीते हों, विलायती कपड़े का रोजगार ...

उन्हें बीच में रोक कर मोतीलाल जी ने कुछ इस तरह कहा, "दाउदी साहब, आप घुमा-फिराकर बात क्यों करते हैं, साफ-साफ क्यों नहीं फरमाते कि मैं शराब पीता हूँ, इसलिए मैं लीडर न चुना जाऊं। सुन लीजिए आप और सब साहबान, मैं जरूर शराब पीता हूँ, लुका-छिपाकर नहीं, सबके जाहिरा में। गांधी जी को यह सब मालूम है। इस सारे वज़हात जानने के बाद आप लोगों को सात दफा गरज हो तो मुझे लीडर चुनिए नहीं तो हरगिज़ नहीं।"

पंडित जी के इस भाषण से उस बैठक में जैसा सन्नाटा छाया था उसे मैं अब तक भी नहीं भूल पाया हूँ। श्री आयंगर महोदय के सारे प्रयत्न के लिए इस भाषण ने वही काम किया जो एक देहाती कहावत कहती है – "सौ सुनार की और एक लुहार की"। मोतीलाल जी के सिवा नेतृत्व के लिए कोई और नाम ही प्रस्तावित नहीं हुआ और वे सर्वमत से फिर कांग्रेस दल के नेता निर्वाचित हुए।

पंडित जी से सम्बन्ध रखने वाली मुझसे सम्बन्धित एक और घटना का मुझे स्मरण है। इस घटना के कारण पंडित जी का मुझ पर कुछ अधिक विश्वास हो गया था। सन् १९२९ के अन्त में कांग्रेस दल का जो अधिवेशन हुआ उसके सभापति प. जवाहरलाल जी चुने गये। उस समय कांग्रेस के दो कोषाध्यक्ष थे – सेठ जमनालाल जी और काशी के बाबू शिवप्रसाद गुप्त। गुप्त जी कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन के समय विलायत में थे। एक दिन बातों ही बातों में मोतीलाल ने मुझसे कहा कि "अब तुम्हें कांग्रेस का ट्रेजरर होना है।" मैंने इतना ही उत्तर दिया कि "मैं तो, जिस काम की भी आज्ञा

आप देंगे, वह करने को तैयार हूँ।" कांग्रेस अधिवेशन के समाप्त होने के एक दिन पहले पंडित जी ने मुझे बुलाया और कुछ असमंजस की मुद्रा में एक केबिल मेरे सामने रख दिया। यह केबिल विलायत से शिवप्रसाद जी ने भेजा था कि वे कांग्रेस के अपने कोषाध्यक्ष पद पर आगे भी बने रहना चाहते हैं। मैं यह केबिल पढ़ते ही पंडित जी की उस मुद्रा का कारण समझ गया। मैंने तत्काल पंडित जी को कहा – "पंडित जी, आप गुप्त जी को कोषाध्यक्ष रहने दें। इस सम्बन्ध में किसी असमंजस की आवश्यकता नहीं है।" पंडित जी कुछ गद्‌गद्-से हो गए।

ऐसा था महान् गुणों और कुछ दोषों से युक्त पं. मोतीलाल नेहरू का उस काल का अद्‌वितीय व्यक्तित्व। जिस प्रकार चन्द्रमा में उसके प्रकाश के कारण उसके दोष छिप जाते हैं, उसी प्रकार पंडित जी के महान गुणों के सम्मुख थे वे क्वचित् दोष।

साभार–
"मोतीलाल नेहरू
एसेज एण्ड रिफ्लेक्शंस आन हिज लाइफ एण्ड टाइम्स"

"परिवार के मुखिया मोतीलाल जी"

उमा नेहरू

पण्डित मोतीलाल नेहरू, जिनको सब "भाई जी" के नाम से पुकारते थे, उनके देहान्त हुए को जो ३० वर्ष बीत गये हैं – पर आज भी ऐसा प्रतीत होता है कि वह संसार से जाकर भी नहीं जा सके हैं। आज दिन भी वह हमारे हृदय की रगों में दौड़ते हैं। प्राणों में बोलते हैं। उनकी बातें, उनकी ही तरह अगणित और अनन्त हैं। स्मृतियों का एक अम्बार है, जिसमें कुछ चुनना कोई सहज बात नहीं है।

भाई जी की परवरिश व शिक्षा इनके बड़े भाई पण्डित नन्दलाल नेहरू ने की थी। पण्डित नन्दलाल नेहरू के गुजर जाने के पश्चात्, पण्डित मोतीलाल नेहरू सारे परिवार के करता-धरता हुए। उस समय नेहरू परिवार लोग बीस-पच्चीस मिलकर एक ही जगह रहा करते थे।

भाई जी को अपने परिवार से प्रेम था, और साथ ही अभिमान और घमंड भी था। परिवार भी भाई जी को बहुत मानता था। नेहरू परिवार धन का भण्डार बना हुआ था। दुनिया से एक हद तक बेखबर था। इस परिवार को अपने ही धन्धों से समय नहीं मिलता था। शानो-शौकत व सभ्यता से इस परिवार को बहुत प्रेम था।

मेरा सम्बन्ध इस परिवार से १९०१ में हुआ, जब मैं इस परिवार में ब्याह कर आयी।

एक दिन मुझे याद है, भाई जी ने मेरी सास श्रीमती नन्दरानी नेहरू, जो भाई जी की बड़ी भावज थीं, से कहा, "आज नयी बहूरानी हमें खाना खिलायेंगी।" मेरी तरफ़ देखकर कहा, "जाओ, एक-एक गर्म-गर्म फुलका रसोई से लाओ, और समय का विचार ऐसा रखना कि थाली के फुलके के खत्म होते ही दूसरा फुलका आ जाये।"

यह सुनते ही मैंने बड़े गौर से थाली के फुलके को देखा। देखने में वह छोटा-सा था। फिर मैंने जब रसोई के फासले पर ध्यान दिया, जो काफ़ी दूर था। इन चीज़ों को देखकर मारे घबराहट के मैं दौड़ पड़ी — ताकि थाली के फुलके के खत्म होने से पहले दूसरा फुलका ले आऊ। ज्यों ही मैं फुलका लेकर घुसी, सब हंस दिये। भाई जी ने हँसकर कहा, "मुझे तो ऐसा मालूम हुआ बहूरानी के दौड़ने से जैसे जलजला आ गया।" फिर कहने लगे, "अबकी जो फुलका लाओगी धीमे कदम से लाना।"

भाई जी बड़े क़ायदे व कानून के आदमी थे। इनकी सारी जिन्दगी क़ायदे व कानून से भरी थी। अक्सर जब खाना खाते थे, अपनी बड़ी भावज से दर्याफ्त करते थे कि किस बहूरानी ने कौनसा अचार, चटनी या मुरब्बा बनाया है। घर की औरतों के हाथ की बनी हुई चीजें देखकर खुश होते थे। खाने के वह शौकीन थे और खाना बनाना भी जानते थे। तरह-तरह की चीजें बनाने में उन्हें बहुत दिलचस्पी थी। कहा करते थे, "खाने की सूरत और सीरत दोनों होनी जरूरी होती है।"

भाई जी जितने क़ायदे व कानून बरतने में सख्त थे उतने ही वह दिल के

हीरा, मुहब्बती इन्सान थे।

भाई जी को बच्चों पर बहुत प्यार था। बच्चों की भी यह हालत थी कि जहाँ 'दादा' जी को देखा, फौरन सारे दिन भर की बातें उन्हें सुनाईं। सब मिलकर भाई जी को चिमट जाते थे।

भाई जी के ड्रैसिंग गाउन की डोरियों में लिपट जाते थे। जब भाई जी विलायत जाते, सारे बच्चों को सईद बन्दर से चित्रों वाले पोस्ट कार्ड भेजते थे। पोस्ट कार्डों के आने पर बच्चों की खुशियों से सारा आनन्दभवन गूँज उठता था।

भाई जी को समाज की त्रुटियाँ देखकर परेशानी होती थी और वह इन त्रुटियों को दूर करने की कोशिश करते थे।

इस जमाने में कश्मीरी बिरादरी दो हिस्सों में बंटी हुई थी। एक धर्म सभा कहलाती थी, ये लोग विलायत जाना धर्म के विरूद्य समझते थे। दूसरी बिशन सभा थी जिसके लोग विलायत से लौटकर प्रायश्चित करते थे। उसी जमाने में भाई जी विलायत गये। वहां से लौटकर उन्होंने प्रायश्चित करने से इन्कार किया। भाई जी ने तीसरी सभा कायम की जिसका नाम इन्होंने सत्य सभा रखा। इस सभा में ज्यादातर नौजवान शामिल हुए। कुछ अरसे बाद वे सब सभाएं खत्म हो गयीं। केवल सत्य सभा रह गयी।

भाई जी गर्मियों में अपने परिवार समेत ज्यादातर नैनीताल जाया करते थे। उस जमाने में हिन्दुस्तानी अंग्रेजों के "वोट क्लब" के मैम्बर नहीं हो सकते थे और न झील में नावें चला सकते थे। हिन्दुस्तानियों की यह दशा देख, भाई जी ने फौरन अपनी मोटर बोट मंगाकर नैनीताल झील में चक्कर लगाने शुरू कर दिये। ऐसा करने से इन्हें रोज पचास रुपया जुर्माना देना पड़ा। रोज, एक हफ्ते तक वही रहा – आखिर को तंग आकर अंग्रेजों ने वह कानून हटा दिया।

मसूरी में भी लायब्रेरी के पास जहां बैण्ड बजता है, वहां हिन्दुस्तानियों को जाने की मनाही थी। इस कानून को भी भाई जी ने हटवा दिया।

यों तो भाई जी की अंग्रेजों से काफी दोस्ती थी, लेकिन जहाँ वह देखते थे कि हिन्दुस्तान का अपमान हुआ, तुरन्ह उसका इलाज करते थे।

जब गांधी जी का नेहरू परिवार में प्रवेश हुआ, तब भाई जी फिक्रमन्द दिखायी देने लगे। बार-बार कहते थे "जिस घर की स्त्रियाँ राजनैतिक जंग में पड़ती हैं, वह घर किस तरह से पनप सकता है।" जब नेहरू परिवार ने खादी पहनना शुरू किया और विलायती कपड़ों को भस्म करने का इरादा किया, तब नेहरू परिवार की बुजुर्ग महिलाओं ने ऐतराज किया और कहा कि सुहागिनें कपड़े भस्म नहीं करती हैं। मुझे याद है, तब सब मिलकर बापू के पास गयीं और कहा कि हमारा इरादा कपड़ा जलाने का नहीं है। हम अपने-अपने कपड़े अपनी उन बहिनों को देंगे जो विलायती पहनती हैं। बापू ने जवाब दिया कि जिस कपड़े को तुमने पहनना पाप समझा, उसका दान तुम नहीं कर सकती हो। हमेशा दान पवित्र व पाक चीज का होता है। आखिर को सारा कपड़ा भस्म किया गया। जब खादी धारण की, उस समय खादी का अर्ज छोटा होता था। दो पाटों को सीकर सबों ने साड़ियाँ बनायीं। खादी इतनी मोटी होती थी कि सर पर पल्ला रखना मुश्किल था। भाई जी ने जब घर की यह सूरत देखी, कहने लगे – बिल्कुल सब की सब भंगनें लगती हैं। भाई जी की तारीफ यह थी कि वह चाहे कुछ भी कहें, लेकिन जब यह महसूस करते थे कि उनका परिवार और खास तौर से जवाहरलाल बहुत तेजी से सियासी जिन्दगी में आगे बढ़ते जाते हैं, वह फौरन खुद चार कदम आगे चलने लगते थे।

इंगलैंड के राजकुमार प्रिन्स आफ वेल्ज जिस समय हिन्दुस्तान आए थे, भाई जी ने इस आन्दोलन में बड़ा हिस्सा लिया था। नेहरू परिवार के सारे मर्द 'राजकुमार का स्वागत नहीं' – 'नो वेलकम टु प्रिन्स' – के आन्दोलन में गिरफ्तार कर लिये गये थे। हालत यह थी कि नवयुवकों के जुलूस गाते हुए निकलते थे: "सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है" नवयुवकों के इन तरानों से सारा शहर गूँज उठता था।

भाई जी ने साइमन कमीशन बहिष्कार का भी आन्दोलन चलाया था। "साइमन, लौट जाओ" (साइमन, गो बैक) के लिखे हुए कनकव्वे साइमन कमीशन जहाँ-जहाँ गया वहाँ-वहाँ उड़ाये गये।

भाई जी को जेल में देखकर सारे घरवालों को बहुत तकलीफ होती थी। उनको मिट्टी पर बैठे या नहाते देखकर परेशानी होती थी। भाई जी बराबर जेल में हँसते रहते थे। जरा परेशान नहीं मालूम होते थे। वह हिम्मतवाले त्यागी थे।

१९३० से १९३१ के समय भाई जी बम्बई गये थे। वहाँ स्त्रियों को शराब व कपड़ों की दुकानों पर धरना देते देखा। वहाँ की वीर महिलाओं को शाबशी दी। बम्बई के तिजारती भी इनसे मिलने आये और प्रार्थना की कि हम तो भारत के मित्र हैं। हमें क्यों बायकाट करते हो? भाई जी ने बहुत ही सुन्दर जवाब दिया कि "जहर तो जहर ही है, चाहे वह यहाँ का हो चाहे लन्दन का हो, जहर ही रहेगा, हमें मरना थोड़े ही है जो विलायती कपड़े को जारी रखें।" भाई जी सुबह चार-पांच बजे से ही अपना काम शुरू करते थे। थोड़ी-थोड़ी देर में अपने नौकर को बुलाते थे। इनकी वह आवाज "कोई है" सारे घर में गूँज जाती थी।

भाई जी के चले जाने से भारत में घोर अंधकार छा गया है। मौत भी एक अजीब चीज़ है। वह किसी को नहीं छोड़ती – चाहे अमीर हो चाहे गरीब, चाहे योगी हो चाहे ईश्वर का अनन्य भक्त – हर एक को अवसर पर ग्रस लेती है।

यद्यपि भाई जी आज हमारे बीच में नहीं हैं, लेकिन उनकी आवाज हमसे साफ कह रही है, "हिम्मत न हारना। मैंने तुम्हें अपनी कमाई का लाल जवाहर दिया है। वह खे कर देश की नैया को पार लगायेगा।"

साभार–
"मोतीलाल नेहरू
एसेज एण्ड रिफ्लेक्शंस आन हिज लाइफ एण्ड टाइम्स"

अधिवक्ता के रूप में मोतीलाल नेहरू

के० एन० काटजू

अपने जीवन के अंतिम दस वर्षों में पंडित मोतीलाल भारतीय राजनीति में अखिल भारतीय स्तर के नेता बन चुके थे। उनका नाम सारे देश के जन-मानस पर छा चुका था। अन्य बहुत से व्यक्तियों के साथ मैं भी उनके निकटतम सामीप्य का सौभाग्य प्राप्त कर चुका था और उनका पूरा आशीर्वाद और स्नेह मुझे प्राप्त था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उनके अपरिमित योगदान का इतिहास तो वस्तुत: सम्पूर्ण राष्ट्र के इतिहास ही का एक अभिन्न अंग है। उनके बारे में कुछ लिखने का मेरा उद्देश्य उनके उस रूप को उजागर करना है, जिस रूप में मैंने उन्हें बार के एक अधिवक्ता की हैसियत में जाना-देखा। मेरे ये संस्मरण फिर सम्भवतया उनकी महानता तक नहीं पहुंच सकते हैं। सन् १९०८ में, जब मैंने अधिवक्ता के रूप में कार्य शुरू किया, अधिवक्ता के रूप में उनका नाम, उनके साथ पंडित सुन्दरलाल

के साथ-साथ, समस्त उत्तर प्रदेश में प्रसिद्धि की सीमाओं को छू रहा था। किन्तु १९१४ में जब मैंने इलाहाबाद हाई कोर्ट बार में प्रवेश किया उसके कुछ ही वर्ष पश्चात् पंडित मोतीलाल अपनी प्रेक्टिस स्थगित कर न्यायालय-परिधि से गमन कर गए। उन्होंने भारतीय राजनीति के दुर्गम क्षेत्र में प्रवेश लिया। और इस प्रकार उन्हें न्यायालय में विचारार्थ मुकदमों में बहस करते देखने का सौभाग्य मुझे बहुत ही कम अवसरों पर प्राप्त हो सका। शक्ति-सामर्थ्य की दृष्टि से, वह एक अत्यंत प्रसिद्ध अधिवक्ता थे। किन्तु उनकी वकालत में कौन-सा चुम्बकीय गुण था, इसकी विवेचना करना मेरे लिए सम्भव नहीं। मैं ही क्या, उस गुण की विवेचना अधिकांशतया असम्भव ही रही। कहा जाता है– राजनीति का अर्थ है व्यक्तित्व। यही अर्थ वकालत का है। यह एक ऐसी विशेषता है जो प्रत्येक व्यक्तित्व के लिय असामान्य है। इसकी नकल नहीं की जा सकती। इस विशेषता का रहस्य केवल स्वरों के उतार-चढ़ाव, बोली के माधुर्य, आंखें मटकाने या झपकाने अथवा मनोविनोद या हंसी में जैसा कि अधिवक्ताओं को न्यायालयों में करते देखा जाता है, निहित नहीं है। रहस्य इन सभी विशेषताओं की सम्मिलित प्रक्रिया में निहित है। मनुष्य अपनी बौद्धिक, शारीरिक और मानसिक-सारी शक्तियों को जब एक ही लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में- यानी उसी के तर्कों की दृष्टि से मुकदमे को देखने के लिए न्यायाधीश को प्रेरित करने की दिशा में– समग्रता से लगाए, तो यह विशेषता उस की समग्रता में दृष्टिगोचर होती है।

हम उन दिनों इलाहाबाद—बार के प्रमुख अधिवक्ताओं में से थे। मैं अक्सर उन्हें अत्यंत आकर्षक ढंग से मुकदमों में बहस करते देखता था। उनकी बहस की हर विशेषता, हर व्यवहार की असामान्यता को मैं अपने मस्तिष्क में संजोकर रखता था, किन्तु मैं उनको कभी व्यक्त नहीं कर पाया। पंडित मोतीलाल व्यक्तित्व के मामले में एक असाधारण गुण से विभूषित थे। वह बहुत सुन्दर थे। उनका व्यवहार बेहद मृदुल था। आवाज में बेहद मिठास थी। वह किसी भी दृष्टि से वाकपटु नहीं थे। किन्तु वाद-विवाद में उनकी रुचि थी और तर्क-शक्ति में तो वह बेजोड़ थे ही। लोग कहते थे कि हार जाने की सम्भावना वाले मुकदमे को उनसे अच्छा और कोई नहीं लग सकता था और जहां-जहां भी उनकी उपस्थिति रही, वहां-वहां वातावरण

ताजगी और सुखद हंसी से गूंजता रहा।

पंडित मोतीलाल ने कानुन की अपनी प्रेक्टिस लगभग सन् १८८५ से कानपुर के जिला न्यायालय में शुरू की। उनके बड़े भाई, नंदलाल उन दिनों इलाहाबाद उच्च न्यायालय में प्रेक्टिस कर रहे थे। अतः मेरा ख्याल है, लगभग तीन वर्ष के बाद ही मोतीलाल जी इलाहबाद की उच्च न्यायालय - बार में आ गये। शीघ्र ही उन्होंने वहां स्वयं को स्थायी रूप से जमा लिया। उन्होंने प्रदेश और प्रदेश से बाहर के न्यायालयों में काफी लम्बी कानूनी-प्रेक्टिस की थी। सन् १९२० में उन्होंने अपनी प्रेक्टिस स्थगित कर दी और यद्यपि सन् १९२६ के पश्चात् उन्होंने पुनः प्रेक्टिस शुरू कर दी थी। कुछ मुकदमों के लिए यदा-कदा वह न्यायालयों में आते-जाते भी थे तथापि उनका मन कहीं और था। इस सम्बन्ध में वह हम सभी को बताया करते थे।

मेरा उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क खासे मनोरंजक ढंग से हुआ। यद्यपि मैंने इलाहाबाद के ला-स्कूल में सन् १९०५ में प्रवेश लिया था। वहां मैं दो वर्ष तक रहा भी, किन्तु मुझे याद नहीं पड़ता कि मैं कभी कहीं मोतीलाल जी से मिला या कभी उनके घर, 'आनंद भवन' गया। उन दिनों उनका जीवन सामान्य भारतीय जन-जीवन से लगभग एकदम दूर था और उस दुनिया में घुस पाने का साहस मुझमें नहीं था। सड़क के किनारे स्थित अपने होस्टल से मैं अक्सर उन्हें काली-चिकनी दो विलक्षण घोड़ियों से जुती गाड़ी में बैठ उच्च न्यायालय को जाने वाले रास्ते पर आते-जाते देखा करता था। हम, विद्यार्थी, उनकी ख्याति और प्रतिष्ठा को जानते थे। फिर भी हमारे लिए वह लगभग हमारी पहुंच से बाहर ही लगते थे। अक्तूबर १९०८ में, यानी मेरी कानूनी प्रेक्टिस की शुरुआत से कुछ ही महीने बाद, मेरे श्रद्धेय गुरू और कानपुर-बार के नेता पंडित पृथ्वीनाथ चक्र, मुझे अपने कनिष्ठ सहयोगी के रूप में लेकर मिरजापुर के सिविल-जज न्यायालय में अटके पड़े एक महत्वपूर्ण मुकदमे के लिए गए। वह मुकदमा बड़े महत्व का, किन्तु काफी दुरूह था। काफी जोखिमभरा था और पंडित पृथ्वीनाथ ने पंडित मोतीलाल को उस मुकदमे में विशेष सलाहकार के रूप में अनुबंधित किया था। व्यावसायिक संबधों के अलावा पंडित मोतीलाल और पंडित पृथ्वीनाथ में

व्यक्तिगत घनिष्ठता भी थी। जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, मोतीलाल जी ने भी अपनी कानूनी-वृत्ति कानपुर में सन् १८८५ के लगभग शुरू कर दी थी और अब तक पंडित पृथ्वीनाथ जी से उनके सम्बन्ध विशेष रूप से निकट के तथा मैत्रीपूर्ण हो चुके थे। उस मुकदमे में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण बिन्दु थे जिन पर पंडित पृथ्वीनाथ मोतीलाल जी से सलाह लेना चाहते थे। अतः निश्चय यह हुआ कि कानपुर से मिरजापुर जाते समय हम बीच में इलाहाबाद रुक जाएं। यही हुआ। हम आनंद भवन (अब स्वराज्य भवन) रात को लगभग ९.३० बजे पहुंचे। वह पहला अवसर था जब मेरे कदम उस भवन में पड़ रहे थे, जिसे मैं उसकी भव्यता के कारण सदा से राजमहल समझा करता था। वहां पहुंचने पर हमें बताया गया कि मोतीलाल जी भोजन करने बाहर गये हुए हैं। उनके नौकरों ने पृथ्वीनाथ जी का आदर-सत्कार किया, किन्तु मैं-उन दिनों बेहद धर्मपरायण हिन्दू था– यह स्वीकार नहीं कर सका कि आनंद भवन में बना भोजन मैं खा सकूंगा। सो मेरे लिए बाजार से भोजन मंगाया गया। अगले दिन सवेरे लगभग ८ बजे - वह दृश्य मुझे आज भी याद है- मैं बरांडे में पृथ्वीनाथ जी के साथ बैठा था कि मोतीलाल जी हमारी ओर आए। जीवन में पहली बार मैंने उन्हें इतने समीप से देखा था। जब मैंने उन्हें प्रणाम किया, उन्होंने पृथ्वीनाथ जी की ओर देखा और कहा-'इन साहेबजादे को मैंने नहीं पहचाना।' पृथ्वीनाथ जी ने उन्हें मेरा नाम बताया और बोले कि इसने अभी-अभी प्रेक्टिस शुरू की है। और यह सुनकर मोतीलाल जी उत्कंठित हो उठे। वह समझते थे कि उनके नौकरों ने हमें कोई असुविधा नहीं होने दी होगी किन्तु जब पृथ्वीनाथ **जी** ने कहा कि मेरे लिए बाजार से कुछ पूरियां और मिठाइयां मंगानी पड़ी थीं तो मोतीलाल जी जोर से हंसे और बोले-'हेलो। यह सब क्या है? तुम्हे पता है कि कल शाम को मैंने क्या खाया था?- मछलियां और बत्तखें।' उन्होंने कुछ मांसों के नाम और भी बताए। अचानक पृथ्वीनाथ जी, जो कभी मोतीलाल जी के खान-पान में भी साथी रहे थे, किन्तु बाद में अत्यंत सरल जीवन बिताने लगे थे, अत्यंत शांति के साथ बोले-'हां, हां, सच है। आप का पेट तो कब्रिस्तान है।' यह बात जिस सहज व्यंग्य और शालीनता के साथ कही गई और जिस मृदुल हास्य के साथ उसे मोतीलाल जी ने स्वीकार किया, वह मेरे स्मृतिपटल पर अंकित हो कर रह गई हैं। और मुझे विश्वास है कि मैं इसे जीवन भर नहीं भूल पाऊंगा। और इस प्रकार से मेरा और मोतीलाल जी का परिचय शुरू हुआ।

किन्तु उन दिनों इस परिचय की अधिक उपयोगिता मुझे महसूस नहीं हुई थी। इसके कुछ दिन बाद कानपुर के सिविल जज-न्यायालय में एक दूसरा अवसर आया। उसकी कहानी भी संग्रह किए जाने योग्य है—

एक रानी अपने पीछे एक बड़ी एस्टेट छोड़कर मर गई। उस पर अधिकार जमाने के लिए अनेक विरोधी दावेदार उठ खड़े हुए। ये सभी दावेदार गरीबं लोग थे, इसलिए बहुत से लाभखोरों को यह एक सुनहरी मौका मिला। उनमें से बहुत से जाल बिछाकर मैदान में कूद पड़े और अपने-अपने संरक्षित व्यक्ति के नाम से दावे डाल दिए। उनमें से एक लाभखोर था कानपुर का बंसीधर। बंसी मोतीलाल जी का घनिष्ठ मित्र था। आनंद भवन में भी उसका नियमित आना-जाना था, जैसे परिवार का ही एक सदस्य हो। इस मामले में बंसी बाबू ने संयोगवश गलत व्यक्ति की पीठ पर हाथ रखा था। एक व्यक्ति ऐसा भी था, जो एकदम से निराश था। वह भी निशाना लगाना चाहता था, किन्तु उसकी पीठ थपथपाने वाला कोई न था। सो उसने अपने नाम से 'पौपर सूट' फायल कर दिया और बहुत कम पारिश्रमिक पर मुझे अपना वकील कर लिया। तभी किसी दूसरे व्यक्ति की ओर से कुछ धनाढ्य मारवाड़ी लाभखोर और दृश्य-पटल पर आए। उन्होंने जो दावा दायर किया, उसमें उन सभी व्यक्तियों के दावों का एक-एक कर प्रतिवाद किया गया था, जो उस बड़ी एस्टेट पर अपना अधिकार जता रहे थे। इस सामूहिक प्रतिवाद में मेरे गरीब दावेदार का नाम भी था।

प्रारम्भिक कार्रवाइयों के बाद, उन धनाढ्य मारवाड़ियों ने विरोधी दावेदारों में से प्रत्येक को खरीद लिया, किन्तु उन्होंने मेरे मुवक्किल को एकदम नजरन्दाज कर दिया। शायद समझा कि यह तो एकदम फालतू है। वस्तुतः उसका दावा था भी एकदम बेजान। जिस दिन अंतिम सुनवाई होने वाली थी, वे मारवाड़ी सज्जन इलाहाबाद से पंड़ित मोतीलाल जी को ले आए। न्यायालय में इतनी भीड़ थी कि सांस तक लेना दूभर हो रहा था। फिर भी वहां कोर्ट लड़ाई सी नहीं थी, क्योंकि हरएक को दे-दिला कर पहले ही निबटा दिया गया था। सो मोतीलाल जी ने समझौते के आशय का प्रार्थनापत्र दाखिल किया और डिक्री के लिए प्रार्थना की। अपनी-अपनी जगह सभी संतुष्ट थे, किन्तु वास्तव में दया के पात्र थे। मेरा मुवक्किल अभी

भी उस समझौता-प्रस्ताव से बाहर था। उसे अभी भी सुनवाई का अधिकार था। सो मुझ पर दबाव डाला गया। विशेष कर बंसी बाबू की ओर से कि मैं झुक जाऊं। पाठक जरा इस दृश्य की कल्पना तो करें-ठसाठस भरा न्यायालय का कमरा। न्यायाधीश की नजरों के सामने पंडित मोतीलाल। विरोधी पक्ष में, नौसिखिया वकील, उम्र २२ वर्ष भी नहीं। शक्ल एकदम बचकना। बार में कुल १८ महीने की प्रेक्टिस। मैं खड़ा हुआ। मैंने कहा कि अमुक -अमुक के लिए खड़ा हुआ हूँ और किसी भी प्रकार के समझौते से अनुबंधित नहीं हूँ। अतः मैं इस संबंध में किसी के प्रति भी उत्तरदायी नहीं हूँ। अतः या तो मुकदमा मेरे मुवक्किल के खिलाफ कर,खारिज कर दिया जाए या उसकी गुणवत्ता के आधार पर उसकी सुनवाई की जाए। मोतीलाल जी को भी एकबारगी धक्का सा लगा। मुझे पता था कि उनकी ओर से किसी भी व्यक्ति ने मेरे मुवक्किल के अस्तित्व पर न कभी ध्यान दिया था, न कभी सोचा था। उन्होंने मुझ पर हंसने की कोशिश की। मेरी पीठ थपथपा कर कहा कि मेरा मुवक्किल कुछ भी नहीं है। उसके दावे में एकदम दम नहीं है। किन्तु मुझे चुप बैठना नहीं था। मैंने न्यायाधीश से कहा— 'श्रीमान्, मैं इस मुकदमे में यहीं, इसी समय बहस के लिए तैयार हूँ और यदि आप मुझे केवल दो घंटे का समय दे दें, तो मैं आपको आश्वस्त करने को तैयार हूँ कि यह मुकदमा खारिज किया जाना चाहिए' आदि आदि।

मोतीलाल जी कभी सोच भी नही सकते थे कि उनके सामने खड़ा युवा-अधिवक्ता जो शक्ल सूरत से निहायत मासुम सा दिखाई देता है, इतने खौफनाक तरीके से फूट भी पड़ सकता है। उनकी समझ में नहीं आया कि क्या किया जाए। मेरी स्थिति भी आक्रामक थी-या तो मुकदमे से मेरा खारिजा या सुनवाई की तारीख। और जब मोतीलाल जी ने दोबारा मुझे समझाने की कोशिश की तो सबार्डिनेट जज ने कहा-'वेल, स्थिति एकदम साफ है।' मोतीलाल जी को झुकना पड़ा और उन्होंने न्यायाधीश से एक सप्ताह का स्थगन मांगा, जो तुरंत स्वीकार कर लिया गया।

इस सप्ताह के दौरान, मेरे मुवक्किल ने भी, मेरा ख्याल है, कुछ रुपया ले लिया। मैं सूखे का सूखा ही रहा और मुकदमा खत्म हो गया। हां, बंसी

बाबू जो मुझे सदा अपने बच्चे की तरह मानते थे, बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने मुझे बाद में बताया कि उस दिन शाम को मोतीलाल जी ने उनसे हंसी में कहा था– 'तुम्हारा मुर्गा लड़ता अच्छा है।' मैं सोचता हूँ कि इस घटना ने और मेरी इस साहसिक वाकपटुता ने मोतीलाल जी पर गहरा प्रभाव डाला, क्योंकि जब चार वर्ष पश्चात् मैं उच्च न्यायालय में आया, एकदम प्रारम्भ ही से, मेरे प्रति उनका व्यवहार असाधारण रहा। और यद्यपि मेरे सामने अक्सर ऐसे अवसर नहीं आए, जब मुझे उनके या उनके विरुद्ध न्यायालय में जाना पड़ता, तो भी सन् १९१७ में स्वराज्य आंदोलन की शुरुआत से ही आनंद भवन में मेरा आना जाना नियमित बन चुका था। पेशे की दृष्टि से मैं उनका अधिक आभारी था क्योंकि १९२० में जब उन्होंने प्रेक्टिस छोड़ दी थी, वह अपने अधिकांश मुवक्किल को अपने मुकदमे मुझे सौंप देने की सलाह देते थे और उनकी बात वस्तुतः मानी जाती थी।

इस संदर्भ में एक विशेष घटना, उनकी सम्मति में अधिवक्ता के रूप में मेरी क्षमता का दिग्दर्शन कराती है, जिसको मैं तब भी और अब भी बहुत महत्वपूर्ण मानता हूँ।

मोतीलाल जी ने इलाहाबाद से 'दि इन्डिपेन्डेंट' नाम का अंग्रेजी का एक दैनिक शुरू किया। उसकी शुरुआत अच्छी थी किन्तु वह अधिक दिन तक चल नहीं पाया। जब तक वह प्रकाशित हुआ, आर्थिक संकोचन का कारण बना रहा और मोतीलाल जी अकेले वह सब कुछ वहन करते रहे। उनका एक स्टाफ रिपोर्टर था, जिसे उन्होंने किसी विशेष घटना पर रिपोर्टिंग करने के लिए पंजाब भेजा था। वह उस व्यक्ति के काम से संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने उसी समय उसे नौकरी से निकाल दिया। उस व्यक्ति ने १९२१ में एक मुकदमा दायर किया जिसमें उसने 'दि इन्डिपेन्डेंट' से क्षतिपूर्ति मांगी। मोतीलाल जी प्रतिवादी समाचारपत्र कम्पनी की ओर से गवाह थे। उन्होंने मुझ से, अंतिम चरण में, समाचार पत्र की ओर से मुकदमे में बहस करने को कहा, किन्तु बीमारी या अन्य किसी कारणवश मैं ऐसा करने में असमर्थ था। अतः मैंने अपने एक योग्य और अनुभवी मित्र को यह काम अपने हाथ में लेने का अनुरोध किया।

वह मेरे से वरिष्ठ था। दुर्भाग्य से यह मुकदमा जिस सिविल जज के

यहां था, वह पब्लिक-सर्वेंट्स की श्रेणी का था। ऐसी श्रेणी के लोग उन दिनों सर्वत्र थे, जो जहां भी अवसर पाते भारतीय नेताओं को दंडित कर अपने विदेशी-आकाओं को प्रसन्न कर अपनी स्वामिभक्ति दिखाने को आतुर रहा करते थे। उस जज ने न केवल प्रतिवादी समाचारपत्र के विरुद्ध निर्णय दिया, अपितु मोतीलाल जी की गवाही भी अविश्वसनीय करार दे दी। उसने मोतीलाल जी के इस कथन पर सर्वथा अनधिकारिक और ईर्ष्या भरे व्यक्तिगत ढंग के आक्षेप लगाए— 'इस तरह का व्यवहार करने वाला व्यक्ति भारत का बड़ा नेता कैसे कहा जा सकता है?'

इस घटना ने मुझे बड़ा दुखी किया। मोतीलाल जी तो इस पर बड़े कुपित थे। जब मैं उनसे मिला, तो उन्होंने सारा गुस्सा मुझ पर उड़ेल दिया। बोले कि यह सब कुछ मेरे कारण हुआ। मैंने न तो इस केस को लिया, न व्यक्तिगत रूप से बहस की। उत्तर में मैंने उन्हें अपनी असमर्थता की बात बताई और कहा मैंने तो कुछ अच्छा ही किया। अपने एक प्रिय मित्र को, जो मेरे से अधिक योग्य, मेरे से वरिष्ठ और कानून में मेरे से अधिक योग्यता रखने वाला था भेज दिया। किन्तु मोतीलाल जी ने इन में से एक भी बात नहीं मानी। बोले कि मैं जानता हूँ उसका धंधा। मुझे मुकदमा देने में उनके अपने कारण थे।

इस मुकदमे की अपील जिला जज की अदालत में की गयी। और इस बार मैंने सावधानी बरती कि सुनवाई के दौरान मैं वहां रहूं। बहस के दौरान मैंने सिविल जज पर जितने कटु प्रहार किए जा सकते थे किए। यहां तक कहा कि उसका व्यवहार वस्तुतः दुष्टता से भरा था और इस प्रकार मैं जिला जज को सही निर्णय की स्थिति तक ले आने में सफल हो गया। जिला जज ने बिना किसी आपत्ति के मोतीलाल जी की गवाही का एक-एक शब्द स्वीकार कर लिया और निचली अदालत से उस पर लगी सभी आपत्तियों और टिप्पणियों को अनुचित बताते हुए रद्द कर दिया। इस बात से मुझे स्वाभाविक है, बड़ी प्रसन्नता हुई। ऐसी ही प्रसन्नता मोतीलाल जी को भी हुई और उन्होंने यह कह कर मेरे जीवन का सबसे बड़ा साधुवाद किया— 'यही कारण था मेरी इस इच्छा का कि यह मुकदमा तुम अपने हाथ में लो और जाकर बहस करो।'

उन्होंने १९२६ में पुनः प्रेक्टिस शुरू की और अगले तीन वर्षों तक, अनेक मुकदमों में मैं उनके साथ रहा। फर्रुखाबाद के एलेक्शन ट्रिव्यूनल के समक्ष प्रस्तुत एक चुनाव याचिका की सुनवाई के दौरान मैं लगातार तीन सप्ताह तक उनके साथ रहा। अपने समय का महत्वपूर्ण लखना केंस, जो संभवतया न्यायालय में उनके द्वारा किया गया अंतिम मुकदमा था। यह मुकदमा वस्तुतः एक मनोरंजक नाटक था। मोतीलाल जी अक्सर कहा करते थे कि अधिवक्ता के रूप में उनके जीवन का आरंभ भी उसी मुकदमे से हुआ और अंत भी। और उनके इस छोटे से वाक्य में ही उनके पेशे की लम्बी कार्यवाहियों से लेकर भविष्य की व्यापक घटनाओं के अनदेखे इतिहास निहित थे। इस मुकदमे की कथा, जैसी कि मोतीलाल जी ने मुझे सुनाई थी, इस प्रकार थी–

१८९४ में , जब मोतीलाल जी इलाहाबाद वार में अपने लिए स्थान वना रहे थे, लखना की रानी के नाम पर उनसे सलाह मांगी गई। रानी किशोरी नाम की उस महिला के विविध रूप थे। वह इटावा जिले के जमींदार राजा जसवंत सिंह की तीसरी पत्नी थी। उसकी जमींदारी काफी बड़ी थी। उसके पति की मृत्यु १८७९ में हुई थी और तभी से वह उस जमींदारी का प्रबंध बड़ी कुशलता से कर रही थी, इतनी कुशलता से कि कोई कोर्ट्स आफ वार्ड्स को राज्य की निगरानी के लिए दखलंदाजी का अवसर ही न मिल पाता था, जैसा कि महिला-मालिक के मामलों में अक्सर उसे मिलता था। रानी अत्यंत दृढ़ इच्छाशक्ति वाली थी और उसमें निश्चय और तुरन्त निर्णय करने की अपूर्व क्षमता थी। किन्तु १८९४ में वह अत्यंत परेशानी में पड़ गई। उसके अनुसार, उसका सौतेला लड़का परिवार पर एक अनजान और अपरिचित बच्चे को अपना लड़का कहकर लादना चाह रहा था ताकि रानी को वरबाद किया जा सके और परिवार को बदनाम। वह यह जान पाने की इच्छुक थी कि इस धोखे का पर्दाफाश कैसे करे। मोतीलाल जी के सामने रखी गयी यह कहानी अपने में बड़ी अद्भुत थी। राजा जसवंत सिंह जाति से ब्राह्मण थे और पुराने राजवंश के थे। उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश में इटावा जिले के जमींदार थे। ए.ओ. ह्यूम (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्मदाता सदस्य के रूप में जिनका हमारे राष्ट्रीय इतिहास में बड़ा योगदान रहा है) उन दिनों इटावा के कलेक्टर थे। वह जनता में काफी

लोकप्रिय थे। उन्होंने अपने जिले में पूर्ण शांति का वातावरण बनाए रखा किन्तु वह जनता को ब्रिटिश-योजनाओं में सक्रिय सहायता देने के लिए फुसलाता था। जसवंत सिंह उसके इन कार्यों में उसके सक्रिय सहायकों में से एक था। उसकी सेवाओं के लिए उसे समुचित पुरस्कार भी दिया जाता था। राजा की उपाधि भी उसे इसी के अंतर्गत प्रदान की गई थी और उसे पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए राजस्व शुल्क से मुक्त अनेक गांवों की जागीर भी दी गई थी। इसके अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति भी उसे मिली थी। किन्तु वह पारिवारिक जीवन की दृष्टि से इतना सौभाग्यशाली नहीं था। पहली पत्नी से उसको एक बेटा था– बलवंत सिंह और तीसरी पत्नी रानी किशोरी से एक लड़की– बेटी महालक्ष्मी बाई। बेटे से बाप को निराशा मिली। उसकी संगति बुरी थी। हत्या के अभियोग में उसे १८७१ में सजा मिल गई। बाप ने बेटे को बचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उसने बड़े से बड़ा वकील किया किन्तु कुछ भी न बन सका। बलवंत सिंह को सजा हो गई। १३ वर्ष की कैद। बाप की निराशा का आकलन किया जा सकता है। इसी गम में १८७५ में, जब वह ६३ वर्ष का था और बलवंत सिंह ३४ वर्ष का, उसने एक 'गिफ्ट डीड' तैयार कराया। उसके अंतर्गत उसने अपनी सारी सम्पत्ति अपनी पत्नी रानी किशोरी के नाम कर दी। अन्य हिन्दुओं की तरह वह अपने वंश को आगे चलाने के लिए एक पुत्र भी चाहता था। किन्तु रानी किशोरी अब पुनः मां बनना नहीं चाहती थी। अतः उसने सोचा कि वह अपने बेटे से ही तो नाराज है। यदि उस बेटे का बेटा हो, फिर चाहे कभी भी हो, उसे अपने पूर्वजों की जमींदारी से अलग रखने का तो कोई कारण नहीं है। अतः उस डीड में एक प्रावधान भी किया गया कि यदि उसका बेटा बलवंत सिंह कभी भी अपने बेटे का पिता बने, तो रानी किशोरी का यह कर्तव्य होगा कि उसके (जसवंत सिंह) पोते के वयस्क हो जाने पर सारी सम्पत्ति उसे सौंप दे। यदि पोता न होगा तो, सारी सम्पत्ति बेटी महालक्ष्मी बाई को जाएगी।

इस 'गिफ्ट डीड' के बाद १८७९ में राजा की मृत्यु हो गई। बलवंत सिंह १८८३ में जेल से छूट कर आया। उसकी सौतेली मां रानी किशोरी ने उसका गर्मजोशी से स्वागत किया। उसे हर खुशी और सम्मान दिया, किन्तु जमींदारी में उसका दखल नहीं होने दिया। किन्तु बलवंत यही तो चाहता था। वह बेहद क्रोधी स्वभाव का था। अतः शीघ्र ही रानी किशोरी और

बलवंत सिंह में अनबन हो गई। बलवंत सिंह की पत्नी नारायणी कुंवर उस समय जीवित थी, किन्तु निःसंतान थी। उसने १८८४ में दोबारा शादी की, किन्तु बच्चा इस बार भी कोई नहीं हो पाया। अब, रानी किशोरी के अनुसार, वह रानी किशोरी के हाथों से जायदाद खींचने के कुचक्र रचने लगा। सबसे पहले उसने इस आधार पर अपने पिता द्वारा किए गये 'गिफ्ट डीड' से छुटकारा पाने के लिए न्यायालय की शरण ली कि हिन्दु कानून के अनुसार किसी भी हिन्दू पिता को यह अधिकार नहीं है कि अपने किसी बेटे को वह पूर्णतया बहिष्कृत कर दे, किन्तु वह जायदाद राजा की अपनी थी— वह उसकी अपनी जागीर थी। पूर्वजों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती नहीं आयी थी और इस संबंध में कानून एकदम साफ और स्पष्ट था। इसीलिए जनवरी १८९० में उसका मुकदमा जिला जज की अदालत ने खारिज कर दिया। बलवंत सिंह ने उच्च न्यायालय में अपील की, किन्तु वह जानता था कि वह हवा में तीर चला रहा है। अतः रानी किशोरी के अनुसार, उसे हानि पहुंचाने के लिए, उसने ४९ वर्ष की आयु में उसी वर्ष तीसरा विवाह दुन्नाज नाम की महिला से रचाया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने भी उसकी अपील अगस्त १८९३ में खारिज कर दी। और मार्च१८९४ में यह समाचार फैला कि दुन्नाज ने एक लड़के को जन्म दिया है। रानी किशोरी के कथानुसार यह सब एक प्रपंच मात्र था। दुन्नाज ने किसी बच्चे को जन्म नही दिया था। एक नकली बच्चे को घर में घुसा कर रानी किशोरी और उसकी बेटी से 'गिफ्ट डीड' के अनुसार मिली जायदाद को छीन ने की गहरी साजिश रची जा रही थी। रानी किशोरी ने मोतीलाल जी से पूछा था कि वह इस षड़यंत्र का पर्दाफाश करने के लिए क्या करे? अपने और अपनी बच्ची के हित किस प्रकार सुरक्षित रखे? अपने पुराने वंश के मान की रक्षा कैसे करे? मोतीलाल जी ने मुझे बताया कि वह इस महत्वपूर्ण मसले पर गौर कर रहे हैं। और सचमुच उन्होंने अपनी एक लम्बी राय लिखी। वस्तुस्थिति के बारे में उनकी राय यह थी कि रानी किशोरी को इस षड़यंत्र का भंडाफोड़ खुले रूप में कर देना चाहिये और बलवंत सिंह को चुनौती देनी चाहिये कि वह न्यायालय में यह सिद्ध करे कि यह बच्चा उसी का है। किन्तु एक कानूनी नुक्ता यह भी था कि क्या जसवंत सिंह की वह डीड जो उन्होंने अपने पोते के होने से पहले ही, अपने होने वाले पोते के नाम कर दी थी, हिन्दू कानून के अंतर्गत वैधानिक थी? इस नुक्ते पर मोतीलाल जी का तर्क था कि गिफ्ट स्तष्टतया अवैधानिक

और निष्प्रभावी थी। पोता उसका लाभ नहीं ले सकता। मोतीलाल जी उन दिनों वकालत के पेशे में उभरते कनिष्ठ वर्ग में थे। अतः निश्चय यह किया गया कि इस मसले पर बंगाल के एडवोकेट जनरल सर चार्ल्स पाल की सम्मति भी ले ली जाए। सर चार्ल्स की इस मसले पर केवल एक वाक्य कि सम्मति मिली। उन्होंने कहा कि गिफ्ट डीड कानून की नजर में स्पष्टतया निष्प्रभावी है और रानी किशोरी को इस मामले में शांत रहना चाहिए। कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। सर चार्ल्स की सम्मति मानी गई और रानी किशोरी शांति से बैठ गईं।

बलवंत सिंह छः वर्ष और जिया और इन वर्षों में उसने अपने बच्चे को हर प्रकार से वैधानिक तरीके से प्राप्त अपने ही बच्चे की तरह पाला-पोसा। उसने उस पर अपना सारा प्यार न्यौछावर कर दिया और जब वह कुछ बड़ा हुआ, उसने अपने सभी मित्रों, जिलाधिकारियों और अन्य सभी से उसका परिचय अपने लड़के के रूप में और लाखन राज्य के भावी उत्तराधिकारी के रूप में कराया।

१९०० में बलवंत सिंह की मृत्यु हो गई और उसकी व्यक्तिगत जायदाद को लेकर उसकी दोनों विधवा पत्नियों में विवाद छिड़ गया। दुन्नाज ने इस बच्चे नरसिंह राव को अपने पिता की जायदाद के एक मात्र वारिस के रूप में प्रस्तुत किया जबकि दूसरी विधवा नारायनी कुंवर ने, जो रानी किशोरी के संरक्षण में रहती थी, इस सत्यता से ही इंकार कर दिया कि बलवंत सिंह किसी बच्चे का पिता था। और इस प्रकार उसने पति की विधवाओं में आधी-आधी बंटने वाली जायदाद में अपने हक का दावा ठोंक किया।

यह मुकदमा अनेक वर्षों तक चला और प्रिवी कौंसिल तक गया। वकालत से संयास लेने के बाद भी १९२८ में मोतीलाल इस मुकदमे की पैरवी करने इंग्लैंड गये। बारह वर्षों के अनवरत संघर्षों के पश्चात् नरसिंह राव यह सिद्ध नहीं कर सका कि वह बलवंत राय का ही पुत्र था। फिर भी वह जमींदारी नहीं पा सका। कानूनी-नुक्ते-नजर से जुडिशियंल कमेटी उच्च न्यायालय से सहमत नहीं थी। उसने निर्णय दिया कि जसवंत राय का निर्णय कानून की दृष्टि से निष्प्रभावी था क्योंकि उसका अभिप्राय तो नरसिंह राव के

लिए कुछ सुविधाएं प्रतिपादित करना था और रानी किशोरी को जायदाद अपने हाथ में रखने का अधिकार दिया गया था। अतः मुकदमा मय खर्चे के खारिज हो गया। और इस प्रकार १८९४ में बंगाल के एडवोकेट जनरल द्वारा व्यक्त सलाह सही सिद्ध हुई। यह सारा मुकदमा समय, धन और शक्ति का अपव्यय साबित हुआ। इस प्रकार इस प्रसिद्ध लखना केस का अंत हुआ।

मोतीलाल जी, यदि मैं गलत नहीं हूँ तो, १९२८ के बाद किसी भी मुकदमे में अधिवक्ता की हैसियत से किसी भी न्यायालय में उपस्थित नहीं हुए और इस प्रकार उनका महान जीवन-वृत्ति लखना एस्टेट केस से ही आरम्भ हुई और इसी केस के साथ समाप्त हुई।

साभार
'मोतीलाल नेहरू: एसेज एण्ड रिफ्लेक्शंस आन हिज
लाइफ एण्ड टाइम्स'

उत्तरदायी स्वायत्त शासन

(भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के चौंतीसवें वार्षिक अधिवेशन में दिया गया मोतीलाल का अध्यक्षीय भाषण अमृतसर: २७ दिसम्बर, १९१९)

सचमुच यह एक असाधारण सम्मान है, जिसके बारे में धारणा है कि यह वर्तमान के झंझावात भरे वातावरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जहाज का कुशलता से नियंत्रण करने मे समर्थ है। जो सम्मान आपने मुझे दिया है, उसका पात्र केवल एक कुशल चालक ही हो सकता है, जो आगे आने वाली चट्टानों और भंजक-अवरोधों का प्रतिकार कर सके।

इस अधिवेशन का एक विशेष प्रयोजन भी है। वह प्रयोजन हाल में घटी पंजाब की दर्दनाक घटनाओं से संबंधित है। हमारी सम्पूर्ण कार्रवाइयों में उसका महत्वपूर्ण स्थान पा जाना भी स्वाभाविक है। इन घटनाओं से

हमारे सामने पिछले बारह महीनों के इतिहास के अनेक काले अध्याय खुलते हैं, किन्तु पिछली अप्रैल में अमृतसर में जो कुछ हुआ, उससे अधिक जघन्य घटना और कोई नहीं है।

साथियो, आप यहां अपने सैकड़ों भाइयों की नृशंस हत्या पर गहरा शोक प्रकट करने यहां एकत्र हुए हैं। आपने अपना सभापति चुनकर उस पर शोक प्रकट करने वाले प्रमुख की जिम्मेदारी सौंपी है। मैं इस स्थिति को आदरपूर्वक स्वीकार करता हूँ और आपको इसके लिए हृदय से धन्यवाद देता हूँ। मुझे इसके निर्वाहन में आपका सक्रिय सहयोग चाहिए। मुझे आशा है कि वह मुझे उदारता से मिलेगा।

पिछले वर्ष, जब हम दिल्ली में मिले थे, विश्व युद्ध समाप्त हो चुका था और हम भविष्य की इस आशा में थे कि शांति बनी रहेगी और दुनिया के सभी लोगों के लिए आजादी का सुखद संदेश लाएगी। अब शांति हो गई है, बेशक आंशिक ही सही, किन्तु इससे विजेताओं तक को काफी कम आराम मिला है। उन्होंने हम से जो वायदे किये थे, वे सभी खोखले निकले। जिन सिद्धांतो के लिए लड़ाई लड़ी गई, भुला दिए गए। रूस अशांत है और यूरोप महाद्वीप में छोटी-मोटी अनेक लड़ाइयां चल रहीं हैं। प्रशियावाद कुचला जा चुका है, किन्तु पशिचम के अन्य देशों में यह फिर से जन्म ले रहा है। सैनिक-शाही को प्रतिष्ठत कर रहा है। तुर्की का भविष्य अधर में लटका है। आयरलैंड और मिस्र को ब्रिटिश साम्राज्य की शांति पर विश्वास करने को बाध्य होना पड़ रहा है। भारत में शांति के पहले दो प्रतिदान रौलेट बिल और मार्शल ला रहे। यह इसलिए नहीं कि लड़ाई लड़ गई। यह इसलिए नहीं कि सैकड़ों हजारों ने अपने प्राण गंवाए। क्या यह कोई आश्चर्य नहीं कि इस शांति से कैसा भी उत्साह नहीं जागा और भारत के अधिकांश लोगों ने शांति समारोहों में भाग लेने से इंकार कर दिया।

जोर-जुल्म के साथ रियायतें भी आई हैं। आयरलैंड की तरह भारत में भी यह योजना पुरानी है, जिसे ब्रिटेन ने बार-बार के मोह-भंग के बदले लाद दिया। हमारे शासक यह महसुस करना भुल गए कि दमन और सांत्वनाएं हाथों-हाथ नहीं दी जा सकतीं। उपहार देने की शालीनता उसे देने के ढंग में होती है, न कि उपहार में। इसी प्रकार लम्बे समय तक चर्चित रिफार्म बिल

संसद में जिस त्वरित गति से आया, उसका एक ही अर्थ था कि यह 'बड़ी मीटिंग' जैसा कि मिस्टर बोनर ला से ध्वनित है, इसके द्वारा कुछ सीमा तक भावनाएं शांत कर सके। इस नए कानून पर हमें अत्यंत गंभीरता से विचार करना है। आपको यह देखना है कि यह आपकी आकांक्षाओं की पूर्ति किस सीमा तक करता है। हां, इसके धुंधलके से प्रकाश की एक किरण भी आती दिखाई देती है, जो भारत के अनेक पीड़ित व्यक्तियों और परिवारों के लिए सुखद बन सकती है। हिज मैजेस्टी सम्राट ने इस बड़ी मीटिंग की पूर्व सन्ध्या को हमारे लिए कृपा कर एक संदेश भेजा है, जिसे हिज मैजेस्टी की ओर से उन समस्त राजनैतिक बंदियों के प्रति जो जेल में पीड़ित हैं या व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर लगे अंकुशों के कारण मर्माहत हैं- वायसराय को क्रियान्वित करना है। अब यह हमारा कर्त्तव्य है मेरे साथियों कि हम अपनी ओर से, भारत की जनता की ओर से, जिसका हम प्रतिनिधित्व करते हैं, हिज मैजेस्टी को अपना साधुवाद भेजें। मुझे इसमें संदेह नहीं कि आप लोग शालीन ढंग से इस कार्य को करेंगे और अगली सर्दियों में हमारे देश की यात्रा पर आने वाले हिज रायल हाईनेस दि प्रिंस आफ वेल्स कोअपना 'हार्दिक स्वागत' प्रेषित करेंगे।

यह इसी शाही-दया का परिणाम है कि आज हम अपनों के बीच में हैं, याने पंजाब के उन बड़े नेताओं के साथ हैं, जो कल तक जेल में थे। मैं इस विशाल कांग्रेस की ओर से उनका हार्दिक स्वागत करता हूं। वे अपने उद्देश्य के लिए संघर्षों की भयंकर परीक्षाओं से गुजरे हैं और आज इस विशाल सभा कि समीतियों में अपने उचित स्थान ग्रहण करने के लिए हमारे साथ हैं। उनकी पीड़ा नहीं जाएगी।

हम अमृतसर और पंजाब में अन्यत्र मारे गये। मृतकों की पवित्र स्मृति को नमन करना चाहिए। जो लोग मृत्यु से भी अधिक भयावह संघातों से ग्रस्त हुए उन्हें भी हमें नमन करना चाहिए। मृतकों या जीवितों की स्मृति या सम्मान में संगमरमर या कांस्य का स्मारक बनाने की आवश्यकता नहीं। हमारे यहां दिए भाषण भुला दिए जाएंगे। जो प्रस्ताव आप यहां स्वीकार करेंगे भविष्य में कदाचित वे केवल इतिहासकारों की रुचि के ही बन कर रह जाएंगे। किन्तु भारत अपने बच्चों के इस त्याग और बलिदान को कभी नहीं

भूल पाएगा।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि इस अधिवेशन का प्रमुख विचार विन्दु पंजाब ही होगा। किन्तु इससे पूर्व कि मैं उसकी विभिन्न समस्याओं को उठाऊं, मै बहादुर पंजाबवासियों को हार्दिक बधाई देता हूँ और विशेषकर अमृतसर के निवासियों को, जिन्होंने इस नगर में अपनी महान राष्ट्रीय सभा का आयोजन करने-कराने में अपने अपूर्व साहस और उत्साह का परिचय दिया है।

भारत ने एक विदेशी और प्रतिक्रियावादी नौकरशाही के हाथों बेहद हानि उठाई है। किन्तु इस दिशा में पंजाब के हिस्से बेहद अवांछनीय गुंडागर्दी ही आई थी। सर हेनरी काटन और मि. बर्नार्ड हैगटन दोनों ही भारतीय सिविल सर्विस के उल्लेखनीय सदस्य थे। दोनों ही ने हमको पंजाब की दयनीय और तेजी से ह्रास की ओर बढ़ती दशा के बारे में बताया था और यह भी कि वहां सैनिक प्रवृत्तियों ने पैर फैला रखे हैं। अपनी पुस्तक 'दि अवेकनिंग आफ इंडिया' में श्री रामसे मेकडोनाल्ड लिखते हैं–

'भारत में यह आमतौर से मान लिया गया है कि सबसे अयोग्य सरकार पंजाब की है। वह हमेशा अपने निर्णय दो आधारों पर लेती है-पहला 'प्रतिष्ठा' और दूसरा 'विद्रोह'। पहले का मतलब है कि वह वही कर सकती है जो वह चाहती है और दुसरे का कि यदि कोई भारतीय उसके कार्यों पर प्रश्न चिन्ह लगाता है तो उसका घर तबाह कर दिया जाएगा और वह प्रान्त से बाहर निकाल दिया जाएगा। उसे राजकार्य में कुशलता का कोई ज्ञान नहीं और न ही उसे राजनैतिक तौर-तरीकों का कोई अनुभव है। जो व्यक्ति सत्ता में है, उसे बस अपने अधिकारों का उपयोग करना है चाहे वे अधूरे ईमानदार गुप्तचर विभाग के रूप में हों या अधूरे ईमानदार अधिशासक अथवा न्याय पालिका रूप में हों।'

१९०५ से पूर्व वस्तुतः पंजाब में कैसा भी जन जीवन नहीं था किन्तु सारे राष्ट्र के विरोध करने पर भी बंगाल के बंटवारे को लेकर जो भयानक गलती लार्ड कर्जन ने की, उससे प्रभावित प्रांत में ही नहीं अपितु सारे देश में

सनसनी और असंतोष फैला दिया। उसी ने पंजाब के जन मानस में भी जाग्रति की लहर पैदा कर दी। लोकल लेजिस्लेटिव काउन्सिल में कोलोनाइजेशन बिल पेश क्यां हुआ, हर ऐसे व्यक्ति के सामने संकट आ खड़ा हुआ। इस बिल के द्वारा कथित कोलोनिस्ट्स द्वारा सम्पत्ति खरीदने के अधिकारों में कटौती और उनके श्रम द्वारा अर्जित सुख-सुविधाओं से उन्हें वंचित रखना था जिनके द्वारा लायलपुर के चारों ओर की बेकार जंगल-भूमि हरे भरे बगीचों में बदल गई थी। इसके विरूद्ध तगड़ा आन्दोलन हुआ। इसी दौरान कोलोनाइजेशन बिल के पारित होने के तुरन्त बाद पंजाब समाचारपत्रों के सम्पादकों और मालिकों को सजाएं दी गईं। किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी आंदोलन न रुक सका, वरन दुगुनी तेजी के साथ फैल गया। आंदोलनकारियों और पुलिस में भी विवाद छिड़ गया। फलस्वरूप अप्रैल १९०७ में लाहौर और रावलपिंड़ी में दंगे हुए। असली दंगाइयों की गिरफ्तारियां और पेशियों के संबध में किसी भी बुद्धिमान *व्यक्ति को कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी किन्तु लाला हंसराज साहनी* और कुछ अग्रगण्य जनसेवी व्यक्तियों की गिरफ्तारी के कोई न्यायोचित आधार नहीं थे, जैसे कि उनके ट्रायल में दिखाए गए थे। इससे भी कम, क्षमादान योग्य था बिना ट्रायल लाला लाजपतराय और अजीत सिंह का निर्वाचन। उन दिनों पंजाब सरकार की नीति थी अपने प्रतिक्रियावादी प्रशासन की ओर से आंखे बंद रखना एवं भारत सरकार तथा राज्य सचिव को उल्टे सीधे तथ्य भेजकर और गरीब आंदोलनकारियों पर अपनी गल्तियों की जिम्मेदारियां थोपकर दंगों के वास्तविक कारणों के प्रति उन्हें अंधेरे में रखना। मैं तो कहूंगा कि यह लार्ड मिंटो का साहस था कि उसने पंजाब काउन्सिल द्वारा पारित अनियमित कानून को अपनी सहमति देने से इंकार कर दिया।

आतंक और दमन किसी भी राष्ट्र के जीवन को नष्ट नहीं कर पाते। वे केवल घृणा को बढ़ाते हैं,जो अंदर ही अंदर सुलगती हुई, कभी न कभी दुर्भाग्य के रूप में फूटकर हिंसा का कारण बनती है। इससे दमन का चक्र दोबारा घूमने लगता है और यह विषैला चक्र इसी प्रकार चलता रहता है। कोई इस प्रकार की हिंसा और राजनैतिक अपराधों के प्रति दुख प्रकट करने के अतिरिक्त कर भी क्या सकता है। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि

यह अनवरत चलते दमन का सीधा परिणाम है।

१९०७ के संकटकालीन समय में पंजाब में लेफ्टिनेट गवर्नर सर बेन्जिल इब्बेटसन उस 'नई हवा' का आकलन करने में लापरवाह नहीं थे जो हर आदमी के दिमाग में चल रही थी किन्तु अपने पालों को उस नई हवा के रुख के अनुकुल व्यवस्था देने की अपेक्षा उन्होंने उसके ठीक विरुद्ध कार्यप्रणाली अपनाई। उन्होंने और उन ही के अनुसार उनके उत्तराधिकारी ने पंजाब प्रशासन की प्रताड़नापूर्ण परम्पराओं के अनुसार दमन पर दमन का रास्ता अपनाया।

सब माइकेल ओ'डायर के शासनकाल के प्रारम्भिक दिनों में 'कोमागाटा मारू' घटना घटी। वे अभागे आदमी, जिन्होंने शांति को पाने की भावना से अपने घर छोड़े, उन में से बहुत से भारत लौटना भी नहीं चाहते थे। उनके लिए सारे रास्ते बंद कर दिए गए और उन्हें भारत लौटने पर विवश होना पड़ा। संभवत: पंजाब सरकार की प्रेरणा से भारत सरकार ने उनके स्वागत का प्रबंध किया। वह स्वागत या इंडिया ओरडिनेस में देश में प्रवेश पाने के अधिकारों का, जिसके अंतर्गत सरकार को यह अधिकार दे दिया गया कि वह भारत में प्रवेश पाने वाले हर व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगा सकती है। और इस प्रकार भारतभूमि पर उतरते ही उन्होंने स्वयं को कैदी के रूप में पाया। देश में और देश से बाहर निरंतर मिले दुर्व्यवहार से वे टूट गए और परिणाम निकला बज-बज दंगे।

'कोमागाटा मारू' घटना ने शांत पंजाब में फिर से अशांति के बीज बो दिए और सर माइकेल ओ'डायर को फिर से एक बहाना मिल गया लार्ड हार्डिंग की अनिच्छुक सरकार से और अधिक प्रभावी अधिकार मांगने का। स्थिति से निबटने के लिए १९१४ और १९१५ के प्रारम्भ में इस तरह की लगातार मांग हुई और भारत सरकार की स्वीकृति और घोषणा के लिए एक विध्वंसकारी ड्राफ्ट औरडिनेंस भेजा गया। अन्ततोगत्वा लार्ड हार्डिंग को झुकना पड़ा और डिफेंस आफ इंडिया एक्ट, जिसमें ड्राफ्ट आर्डिनेंस के अधिकांश प्रावधान समाहित थे, इंडियन काउन्सिल द्वारा अति शीघ्रता से

पारित कर लिया गया। युद्धस्तरीय यह बिल किस तरह से केवल पंजाब में नहीं, अपितु दूसरे प्रांतो में भी लागू हुआ, युद्ध से असंबंधित मामलों से निबटने के लिए, सभी जानते हैं।

१९१५ से १९१७ तक की अवधि में डिफेंस आफ इंडिया एक्ट के अंतर्गत बनाए गए विशेष ट्रिब्यूनल विभिन्न षड़यंत्र-अभियोगों की सुनवाई में व्यक्त रहे। भाषाई समाचारों की आवाज निर्ममता से दबायी गयी और सैकड़ों व्यक्ति डिफेंस आफ इंडिया कानून के अंतर्गत या इन्प्रेस आर्डिनेंस के अंतर्गत दंडित किए गए। इसी अवधि में लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्र पाल के पंजाब प्रवेश पर पाबंदी लगाई गई। तिलक के संबध में यह आदेश हाल ही में वापस लिया गया था। मुझे विश्वास है कि इंग्लैंड में अपने उद्देश्य के लिए उनके द्वारा किए गए कठोर श्रम के बाद उनको यहां हार्दिक सम्मान देने के लिए आप सभी मेरे साथ होंगे। श्री पाल का भी, जो यहीं हैं, मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ।

अब मैं ओ'डायर कालीन प्रशासन द्वारा युद्धस्तर पर की गई उन गतिविधियों पर आता हूँ, जो देशभक्ति और साम्राज्य के नाम पर की गई और जिनमें ऐसे तरीके इस्तेमाल किए गए जो मेरी जानकारी में अब तक आए सभी तरह के तरीकों से कहीं अधिक भयानक थे। युद्ध के आरंभ में कुछ समय तक पंजाब में सैनिक भर्ती का कार्य सामान्य रूप से चला। किन्तु उसके बाद सर माइकेल ओ'डायर ने यह सोचकर कि क्यों न मैं भारत में सर्वाधिक सैनिक भर्ती का श्रेय प्राप्त करूँ-भर्ती के तरीकों में अमानवीयता की सीमा तक के उपायों को लागू कर दिया। तभी युद्ध साधनों में वृद्धि की अपील की प्रधानमंत्री ने और इस अपील के बाद तो सर ओ, डायर की निर्दयता की कोई सीमा ही न रही। पंजाब बार कांफ्रेंस में उसने अपने भाषण में कहा-

'आप दिल्ली-योजना के बारे में जानते हैं। पंजाब में उसको क्रियान्वित करने की अपनी योजना को केवल एक वाक्य में बता सकता हूँ। नियमित सेना के लिए दो लाख व्यक्ति, यदि संभव हुआ तो वालंटियर भी, आवश्यकता पड़ने पर नई भर्ती भी। इंडियन डिफेंस फोर्स के भारतीय कोटे

के लिए हम से दो लाख व्यक्ति मांगे गए हैं। युद्ध ऋण के लिए हमारे प्रयास अंत तक चलेंगे, हर तरह से चलेंगे।'

दिल्ली कांफ्रेंस में भारत से केवल ५,००,००० व्यक्तियों की भर्ती का निश्चय किया गया थी। इसमें से सर माइकेल ओ'डायर ने अपने ही प्रान्त से ४० प्रतिशत की पूर्ति करने का निश्चय कर डाला। जबकि वहां की जनसंख्या, देशी रियासतों की जनसंख्या को मिलाकर कुल १३ प्रतिशत थी। यह काफी बड़ा कार्य था-पंजाब की वीर-कौमों के लिए भी युद्ध शुरू होने के बाद से अब तक २,५०,००० सैनिक और ७०,००० असैनिक दे भी चुकी थीं। अतः आगे के भर्ती प्रयासों के लिए 'सैनिक-असैनिक' आदि शब्दों के स्थान पर 'यदि संभव हुआ तो वालंटियर भी। आवश्यकता पड़ने पर नई भर्ती भी' आदि शब्दों का इस्तेमाल किया गया। और फिर पूरा पंजाब अधिकारियों के दमन चक्र में फंस गया। 'कोटा सिस्टम' का तरीका ईजाद किया गया। हर गांव में पुरुष जनसंख्या के तख्मीने लगाए गए और हर गांव को एक निश्चित अवधि तक, एक निश्चित संख्या में भर्ती के आदेश दिए गए। यदि निश्चित अवधि तक निश्चित भर्ती संभव नहीं हो पाई तो अनेक गैरकानूनी और दमनकारी तरीके अपना कर लक्ष्य पूरा किया गया। गांव वालों को सामूहिक दंड दिए गए और व्यक्ति-व्यक्ति का जीना दूभर कर दिया गया।

इसी प्रकार के तरीके प्रान्तीय कोटे के अनुसार युद्ध ऋण की राशि जमा करने के लिए अपनाए गए। इससे सारे देश में असंतोष फैल गया। भारत के बजट पर मि. मोंटेगु ने अपने अंतिम भाषण में कहा था—

'सैनिकों की भर्ती का काम, विशेषकर दंगा-फसादों से प्रभावित क्षेत्रों में इस उत्साह और उत्कंठा से चल रहा है कि मुझे इस बात में काफी दम लगता है कि बहुत से परिवारों में रोटी कमाने वाला भी न रहा होगा।'

रौलेट बिल्स के प्रावधान तो भारतीय जन जीवन के लिए वैसे महामारी का रूप लेकर आए। इस महामारी से लड़ने के लिए महात्मा गांधी ने जनप्रसिद्ध सत्याग्रह आंदोलन की शुरुआत की। देश की राजनीति में एक नई शक्ति, नई चेतना ने प्रवेश किया। सारे देश में अचानक जागृति

फैल गई। घर-घर में सत्याग्रह का नाम गूंज उठा। हम में से कुछ को सत्याग्रह शब्द से ध्वनित अर्थ पसन्द नहीं था। कुछों का विचार था कि अभी जन अवज्ञा का उचित समय नहीं आया। किन्तु ऐसे बहुत कम होंगे जो सत्याग्रह के मूल-सिद्धांतों से असहमत हों। जहां तक मैंने उसे समझा है— सत्य, निर्भयता और अहिंसा का नाम ही सत्याग्रह है। यूं यह हर व्यक्ति का अपना अधिकार है कि वह किसी भी ऐसे तथ्य को स्वीकारे या अस्वीकार कर दे, जिस पर उसकी आत्मा गवाही न दे।

अब आप चाहें उसे सत्याग्रह कहें या और किसी नाम से पुकारें। यदि हमे संसार के देशों में सम्मानजनक स्थान ग्रहण करना है, सत्याग्रह में निहित गुण हमारे लिए परमावश्यक हैं। हम तब एक आजादी पाने योग्य नहीं, न ही पा सकते हैं जब तक हम इन गुणों का समावेश अपने जनजीवन में नहीं करेंगे। जब तक हम सत्य पर नहीं टिकेंगे, निर्भय नहीं बनेंगे, हम दासत्व की मनोवृत्ति से छुटकारा नहीं पा सकेंगे। अहिंसा से हमारा परम्परागत संबंध नहीं है। यह पश्चिम का हथियार है और हमें सेना के बल पर आजादी पाने के सपने त्याग देने चाहिए। यदि इस तरीके से, मान लो हमें आजादी मिल भी गई,तो वह एक टूटीफूटी उजाड़ सी विजय होगी। इस तरीके से आजादी पा कर हम आंतरिक खुशी नहीं पा सकेंगे।

६ अप्रैल को हुए शान्तिपूर्ण प्रदर्शन ने सत्याग्रह की भावना की झलक दी थी। वह दिन भारत के लिए एक चिरस्मरणीय दिवस था। वर्ष की सबसे बड़ी घटना थी। कुछ लोग भारतीय परम्पराओं और इतिहास से अनभिज्ञ, पश्चिम की तरह हड़ताल को 'साधारण काम-बंद' से जोड़ते हैं। इसे दंगे-फसाद और खून-खराबे की पूर्व घटना की संज्ञा देते हैं। किन्तु भारत में हड़ताल एक आध्यात्मिक हथियार है। ऐसा दुख प्रकट करने का पुराने जमाने का तरीका, जिसमें किसी मरीज के कष्टों का सही निराकरण न हो पाने की व्यथा शामिल हो। इसका उपयोग कानून और व्यवस्था की शक्तियों के विरुद्ध किसी हथियार या किसी धमकी की तरह नहीं होता जैसा कि सत्याग्रह-दिवस पर सभी ने देखा। इस दिन पुलिस या मिलिटरी से तनिक-सा भी झगड़ा किए बिना शक्तिशाली प्रदर्शन शांतिपूर्वक गुजर गया।

महात्मा गांधी के कुछ शब्दों को तोड़-मरोड़ कर ही यह अर्थ निकाला गया कि सत्याग्रह आंदोलन भारत में दंगे-फसादों का कारण था। साथियो, मैं जोर देकर कहता हूँ कि ऐसा नहीं था। न तो सत्याग्रह और न ही हड़ताल इसका कारण थे। हां, उनके कारण अधिकारी वर्ग बुरी तरह अप्रसन्न था और इसी ने उन्हें जनता में बदअमनी फैलाने को उकसाया। पंजाब में कहीं भी कानून की जन अवज्ञा नहीं की गयी। सत्याग्रह देश के अन्य भागों में भी और जोर से फैला। वहां कहीं भी कोई दंगा-फसाद नहीं हुआ। ६ अप्रैल की हड़ताल ने कहीं भी शांति भंग नहीं की। यह तभी हुआ जब इस शहर के दो लोकप्रिय नेता अचानक निर्वासित कर दिए गए और महात्मा गांधी, वर्तमान के सर्वोच्च प्रतिष्ठित भारतीय, गिरफ्तार कर लिए गए। इससे देश के कुछ भागों में जनता का धैर्य सीमा लांघ गया। ऐसी घटना सत्याग्रह या हड़ताल के बिना भी हो सकती थी। वे इसे भलीभांति जानते थे, विशेषकर पंजाब के लिए कि उनके उकसाने वाले कार्यों के परिणामस्वरूप संकट हो सकते हैं और उन्होंने तदनुसार कदम उठाए।

इसके बाद जो घटनाएं घटीं, वे सभी आपको याद होंगी। मार्शल-ला लागू किया गया और काफी समय तक पंजाब शेष दुनिया से कटा रहा। सचाई हस से छिपी रही और हम सभी को वहां के हालात जानने के लिए केवल एक तरफा सरकारी सूचनाओं पर निर्भर रहना पड़ा। किसी भी बाहरी व्यक्ति को प्रभावित क्षेत्रों में जाने की अनुमति नहीं थी। यहां तक कि श्री एन्ड्रयूज भी प्रांत से बाहर कर दिए गए। मार्शल-ला की घोषणा के कुछ दिन बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने मांग की कि एक निष्पक्ष और सर्वसाधन सुलभ जांच-कमेटी वैठाई जाए। और कुछ ही दिन बाद जांच के लिए एक उप-समिति नियुक्त की गई। इस जांच कमेटी ने महीनों परिश्रम किया और काफी गवाहियां और साक्ष्य एकत्र किए। आशा है कि वह इन साक्ष्यों को सरकार द्वारा घोषित आधिकारिक कमेटी के समक्ष प्रस्तुत करेगी।

अमृतसर के निवासियों ने ६ अप्रैल को सच्चे अर्थों में सत्याग्रह की भावना से काम किया। ऐसा ही उन्होंने रामनवमी के दिन ९ अप्रैल को किया। मुसलमानों ने भी अपने भाइयों के साथ मिल कर खुशी और उत्साह

से त्यौहार मनाया। कोई हिंसा नहीं, कोई धमकी नहीं। जुलूस ने डिप्टी कमिश्नर के सम्मान में इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय धुन भी बजाई। अगले कुछ ही घंटों में स्थिति ने अत्यंत करुण मोड़ लिया। बाजार रुदन से भर उठे। वे लोग जो रात से पहले खुशी मना रहे थे, अपने पगड़ी और जूते उतार कर शोक के अथाह समुद्र में डूब गए, क्योंकि उन्होंने सुना कि उनके दो प्रिय नेता अचानक निर्वासित कर दिए गए। वे नंगे हाथ-नंगे सिर (जैसा कि दुख के अवसरों पर भारतीय परम्परा है) डिप्टी कमिश्नर के निवास पर यह प्रार्थना करने गए कि उनके नेताओं को मुक्त कर दिया जाए। किन्तु बदले में उन पर गोलियां चलाई गई। कुछ मरे, काफी घायल हुए। जनता की भावनाएं बदल गयीं और जैसा कि ऐसे समय में भीड़ करती है, वही हुआ और चरम सीमा तक हुआ।

इसके कुछ समय बाद बिगड़ी जनता का रुख पुन: बदला। दो या तीन घंटे के पागलपन के बाद उन्हें होश आया। उन्हें अपने कार्यों पर ग्लानि हुई और पुलिस अथवा मिलिटरी के हस्तक्षेप के बिना उन्होंने स्वयं ही वह विनाश लीला रोक दी।

लार्ड हन्टर-कमेटी के समक्ष हुए बयानों में अमृतसर के तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर मि. माइल्स इरविंग से उन लोगों के विषय में पूछा गया जो १० तारीख को उनके निवास पर जुलूस की शक्ल में गए थे। उसने कहा – 'हां, वे मेरे निवास स्थान पर आए थे – मैं जानता था। वे कोई साधारण विरोध व्यक्त करने नहीं आए थे। मेरे पास आदमी सही वेशभूषा में आते हैं, किन्तु वे सभी नंगे सिर और नंगे पांव थे। वे सचमुच दंगा फसाद करने आए थे।'

प्रश्न किया गया – 'ऐसा करने का कारण दुख और शोक व्यक्त करना भी हो सकता है?'

उत्तर मिला – 'यदि वह दुख की अभिव्यक्ति थी, तो भी हिंसात्मक थी।'

इस प्रकार भारतीय सिविल सर्विस में पूरी आयु बिताने के बाद भी मि.

माइल्स इरविंग की नजर में नंगे सिर और नंगे पांव का अर्थ हिंसा ही रही। जनता के स्वभाव और जनपरम्परा से अनभिज्ञता उसके लिए, जिसे उस जनता पर शासन करना है, अक्षम्य है। जब यह अनभिज्ञता सांघातिक परिणामों को जन्म दे, तो यह अपराध बन जाती है।

डा. किचलू और सत्यपाल का आकस्मिक निर्वासन हमारे प्रशासनतंत्र का न समझ में आने वाला कार्य था। भली भांति यह जानते हुए भी कि विद्रोह केवल हवाई है, उन्होंने केवल वह कदम उठाया, जिसे केवल नौकरशाही ही पसंद कर सकी। वे जानते थे कि इससे जनता में बेचैनी फैल सकती है -- किन्तु क्या हुआ? उन्हें इसका आभास नहीं हुआ कि इसकी जनता पर क्या प्रतिक्रिया होगी। वे सदा स्वयं को न्यायाधीश ही समझते रहे। अपने प्रतिपक्ष को कठोर और कड़ुवा न्याय ही पिलाते रहे।

बैसाखी पर हुई दर्दनाक घटना इन सबसे शर्मनाक और भयावह थी। न कोई भारतीय और न ही कोई सच्चा अंग्रेज खूनी बाग की कहानी सुनाने का साहस कर सकता है। हमारे मित्र और प्रान्त व देश के प्रिय नेता श्री सी.एफ. एन्ड्रयूज ने उसे 'एक निर्मम और पूर्व नियोजित षडयंत्र' की संज्ञा दी है। वह कहते हैं--

'मैंने उस घटना के छोटे से छोटे प्रत्येक पहलू पर पूरे ध्यान से पूरी तरह विचार किया है और मैं अपनी व्यक्तिगत जांच पड़ताल के बाद कह सकता हूँ कि वह एक अकथनीय निर्ममता, अक्षमनीय घटना थी....'

उस घटना के सारे तथ्य आपके सामने हैं। उन्हें अधिकांशतया अधिकारियों द्वारा भी स्वीकार किया जा चुका है। जनरल डायर, जो इस सारे कृत्य की जड़ था, अपनी इस उपलब्धि को बढ़ा-चढ़ाकर कहता रहा। वह इसे न्यायोच्चित सिद्ध करता रहा। उसके लिए यह एक 'दयापूर्ण कार्य' था कि बिना चेतावनी दिए निरीह भीड़ पर गोलीबारी की गई। वह मानता है कि बिना गोली चलवाए भी वह उस भीड़ को तितर-बितर कर सकता था। किंतु ऐसा करना कानून और व्यवस्था के रक्षक के नाते उसकी शान में बट्टा होता। अतः अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए उसने तब तक गोलीबारी जारी रखने का आदेश दिया, जबतक एक भी कारतूस बचे।

फलस्वरूप लगभग २००० व्यक्ति या तो मारे गए या कुछ जख्मी हुए। इतना ही नहीं लार्ड हन्टर कमेटी के समक्ष अधिकारियों ने इस कार्य को लगातार उचित ठहराया। कहा गया कि उप्रदवकारियों ने आसपास के जिलों तक को प्रभावित किया था। मानवता के विरुद्ध ऐसे घृणित कार्य करने पर भी जनरल डायर आज भी सुरक्षित है। उसके भूतपूर्व प्रमुख ने उसे आशीर्वाद दिया और जनता तथा सैनिक प्रशासन के उसके साथी उसके कंधे से कंधा मिला कर खड़े उसके इस कार्य का समर्थन करते रहे हैं।

जलियांवाला बाग में गोलीबारी ही जनरल डायर का एक मात्र काम नहीं था। उसके प्रत्येक आचरण से उसके विकृत मस्तिष्क की गंध आती थी। सभी भारतीय जो एक विशेष गली से गुजरा करते थे, विवश किए गए कि वे कीड़ों की तरह से रेंग कर उसे पार करें। क्यों? क्योंकि कुछ दिन पहले उस गली में गुंडों ने मिस शेरवुड पर हमला किया था। उस गली से गुजरने वाले लोगों को दंड देने के लिए क्या इससे अच्छा कोई और साधन जनरल डायर के पास नहीं था?

अमृतसर में जनरल डायर ने ऐसा ही एक और कदम उठाया — सार्वजनिक स्थानों पर बेंत-वर्षा, प्रतिष्ठित व्यक्तियों का निमर्मता से प्रताड़न आदि। मुझे अधिक कुछ नहीं कहना। ये सारी घटनाएं आतंकवाद की जीती जागती तस्वीर हैं — जनता की भावनाओं को कुचल डालने की कोशिशें हैं।

लोगों में आंतक पैदा करने की कोशिशों के साथ-साथ पंजाब के अधिकारियों ने हमारे राजनैतिक जीवन की एक अमूल्य उपलब्धि को भी तहस-नहस करना चाहा। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों की एकता में विघ्न डालने का कुचक्र चलाया। साथियो, आपको हिन्दू-मुसलमानों के भातृत्व समागमों के उन मनोहरी दृश्यों का पता ही होगा, जो हाल के उपद्रवों के दौरान दिल्ली, लाहौर तथा देश के अन्य भागों में हुए थे और जिनमें सारा आकाश 'हिन्दू मूसल की जय' के नारों से गूंज-गूंज उठा था। भाइचारे की इन भावनाओं को पंजाब के अधिकारियों ने सम्राट के विरुद्ध बगावत का रंग दे डाला और इसके लिए एक नए दंड का प्रावधान किया गया।

मार्शल-ला के घिनौने कामों में सर्वाधिक घिनौना काम रहा विभिन्न प्रकार से हिन्दू मुस्लिम एकता का सार्वजनिक रूप से उपहास उड़ाना। हिन्दू का मुस्लिम मस्जिद में जाना या मुस्लिम का हिन्दू मंदिर में जाना। हिन्दू और मुसलमान का एक ही गिलास में पानी या शर्वत पीना – इन दोनों को एकता के सूत्र में बांधने के प्रयास थे। किंतु अधिकारियों की प्ररेणा से हिन्दू, मुसलमान और सिखों के लिए पृथक-पृथक राजनैतिक दल या सभाओं के गठन का नया प्रयास किया गया। मुझे पता नहीं कि इस दिशा में वे कितना आगे बढ़े किन्तु मुझे विश्वास है कि हर जाति के मेरे साथी देश निवासी, इस प्रकार की कुचालों से सावधान रहेंगे।

मुझें विश्वास है कि अंग्रेस अपने देश की न्याय पालिका और अपनी प्रतिष्ठा पर गर्व करते हैं, मैं उन ही से पूछता हूं कि क्या लार्ड चेम्सफोर्ड ने उनके सम्मान की रक्षा की? क्या स्वयं में उनके विश्वास की योग्यता पुष्ट थी? क्या वे भारत में इस 'आतंकवाद' को सहन कर पाएंगे?

अब मैं उस नए रिफोर्म्स एक्ट की चर्चा करूंगा जिसके प्रायोजकों ने पार्लियामेंट में हमे बताया है कि यह इंगलिश इतिहास में अनूठा और अनेक लक्ष्य वाला है। वह हमें अपरिमित अधिकार देता है। हमारे कुछ देशवासियों ने इसका खुले दिल से स्वागत किया है, दूसरों ने इसे निरर्थक करार दिया है। अब यह इस कांग्रेस का कार्य है कि उस पर विचार करके देश को सही निदेश दे।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि पिछले वर्ष आयोजित विशेष दिल्ली कांग्रेस के समय से आज की परिस्थिति में काफी अंतर आ गया है। उस कांग्रेस के सामने विभिन्न योजनाएं और प्रस्ताव थे और यह उसके ऊपर निर्भर था कि ऐसी किस योजना और प्रस्ताव को स्वीकार करे जो समग्र देश के हित में हो। मांटेगू-चेम्सफोर्ट के प्रस्ताव अब पार्लियामेंट के कानून में परिवर्तित हो गए हैं और हमें उसके प्रावधानों पर विचार करते समय पार्लियामेंट की व्यक्त इच्छा का सम्मान करना होगा। देश के लिए, नई पुरानी चुनावी, राजनैतिक और प्रशासकीय-तंत्र के लिए अपनी नीति बनाते समय हमें उन प्रावधानों को विचारगत रखना होगा। फिर भी यह तर्क कांग्रेस पर लादा नहीं जा सकता कि उसे स्वीकार करना उसका कर्त्तव्र्य है,

न ही यह कि कांग्रेस पार्लियामेंट के इस निर्णय को अस्वीकार करे। मेरे विचार में न तो संयुक्त पार्लियामेंट्री कमेटी की रिपोर्ट और न ही पार्लियामेंट की उस समय की कार्रवाइयां, जब उसने इस बिल को कानून में परिवर्तित किया – कांग्रेस के लिए कोई ऐसा कारण दर्शाती हैं कि वह पिछले वर्ष देश की वास्तविक आवश्यकताओं पर दिए गए अपने विचारों में संशोधन करें या पुनर्विचार करे। कई दशाओं में उन आवश्यकताओं की आंशिक रूप से पूर्ति हो गयी है। कानून भारत के निवासियों की इच्छाओं पर आधारित नहीं है और उसके प्रावधान कांग्रेस की मांगों की न्यूनतम पूर्ति करते हैं। फिर भी हमें मन छोटा नहीं करना चाहिए। हमें स्वीकार करना चाहिए कि उसके अंतर्गत हमें कुछ अधिकार मिले हैं। सेवाओं के ऐसे क्षितिज हमारे लिए खुले हैं, जो अभी तक भारतीयों के लिए बंद थे। मेरे विचार से इन स्थितियों में हम सभी का कत्तव्र्य है कि जो कुछ हमें मिला है, उसे स्वीकार करें और जो शेष हैं, उसके लिए संघर्ष करते रहें।

इस बिल से हमें कुछ अधिकार अवश्य मिले हैं किन्तु निःशुल्क नागरिकता, या अधिशासकों द्वारा न्याय और व्यवस्था के प्रचालन में सत्ता के दुरुपयोग की जांच करने के अधिकार हमें नहीं हैं। इस प्रकार देश की अनवरत मांग 'अधिकार घोषणा पत्र' को पूरी तरह नजरन्दाज किया गया है। यह मांग बम्बई में सम्पन्न स्पेशल कांग्रेस ने स्पष्ट शब्दों में रखी थी और पिछले वर्ष दिल्ली में इसका अनुमोदन हआ था। कोई भी विधान हमारी आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सकता यदि उसमें हमारे मूल अधिकारों के बारे में पूरी गांरटी और स्पष्ट घोषणा नहीं है।

'अधिकार घोषणा पत्र' विषयक हमारी मांग पार्लियामेंट्री संयुक्त कमेटी के सामने रखी गई थी। हमारे प्रतिनिधिमंडल द्वारा उस पर विद्वत्तापूर्ण अपना पक्ष भी रखा गया किन्तु कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में उसका तनिक सा उल्लेख करने की भी शालीनता नहीं दिखाई। और इस प्रकार हम अंधेरे में ही रह गए।

इस कानून के इस पक्ष ने मुझे सबसे अधिक निराश किया है कि इसमें भारतीय नारी के राजनैतिक अधिकारों के साथ न्याय नहीं किया गया है।

मुझे आशा थी कि पार्लियामेंट इंग्लैंड में हुए महिलाओं के आंदोलन से कुछ लाभ उठाएगी। किन्तु उन्होंने फ्रेंचिज कमेटी की गलती दोहरी दी।

अब मैं खिलाफत आंदोलन पर आता हूँ। यह एकदम असंभव है कि जब देश का एक भाग कष्टों की भयंकरता के बीच से गुजर रहा हो, तो दूसरा भाग चुपचाप उसे देखता रहे। यह बात इससे सिद्‌ध हो गई कि जब गैरमुस्लिमों की विशाल बहुसंख्या ने मुस्लिमों के साथ भाई-चारा स्थापित किया और देश में हाल ही के शांति समारोहों में उन्हें भाग लेने से रोक लिया। इस कांग्रेस से मैं इस संबंध में या इस प्रश्न को प्रमुख कत्तर्व्य का स्तर देने पर बल देने के संबंध में कुछ कहना आवश्यक नहीं समझता।

भारतीय मुसलमानों के विचार से लड़ाई में तुर्की का प्रवेश एक अत्यधिक महत्व की घटना थी। किन्तु यह देखकर भी उनके विचारों और रुझानों में कोई अविश्वसनीयता उत्पन्न नहीं हुई कि तुर्की के युद्‌ध में कूदने के फलस्वरूप सम्राट के प्रति उनकी स्वामिभक्ति और देश तथा इस्लामी दुनिया के धार्मिक नेता के प्रति उनके कर्त्तव्यों को लेकर एक विवाद खड़ा किया जा रहा है। ये संदेह बहुत कम समय तक रहे और भारतीय मुसलमानों की प्रसन्नता का उस समय ठिकाना न रहा जब लार्ड हार्डिंग द्‌वारा २ नवम्बर १९१४ को उनके बारे में अविस्मरणीय घोषणा की गई जिसके द्‌वारा भारतीय मुसलमानों के धार्मिक विचारों को किसी भी प्रकार की दखलन्दाजी से सर्वथा मुक्त कर दिया गया। इस घोषणा के पश्चात् इसी प्रकार के आश्वासन दूसरे ब्रिटिश राजनेताओं द्‌वारा भी दिए गए। मिसर लायड जार्ज ने ५ जनवरी १९१४ को अपने प्रसिद्‌ध भाषण में कहा — 'न हम तुर्की से उसकी राजधानी छीनने के लिए लड़ रहे हैं, न एशिया माइनर की समृद्‌ध और विख्यात भूमि।'

इन प्रश्नों से, जिनकों राजनैतिक समाधान चाहिए, मैं उस प्रश्न पर आ गया जिसे न राजनैतिक समाधान चाहिए और न कानूनी। फिर भी अच्छाई के निमित्त उसके लिए संघर्ष आवश्यक है। स्वदेशी को ही लीजिए। गांधी जी ने इसे अपना प्रश्न बना लिया है। यदि उनके वश में होता और यदि वह कर सकते तो हथकरघे के सम्पूर्ण पुराने उद्‌योग को फिर से जीवित कर

डालते और देश को आत्मनिर्भर बना डालते। आधुनिक अर्थशास्त्री आज के मशीन युग में इस योजना की सफलता में संदेह कर सकते हैं। किन्तु गांधी जी कि योजना एक ही है जिसमें कुछ बेकार नहीं जाता और यदि यह लोकप्रिय हो जाए तो कृषि के सहायक-रोजगार के रूप में यह कई समस्याओं का निदान बन जाए। हमारे देश की ७५ प्रतिशत जनसंख्या किसान है। कैसी भी कृषक जनसंख्या सहायक रोजगार के बिना जीवन यापन नहीं कर सकती। यदि हमारी महिलाएं हाथ की कताई का काम संभाल लें और यदि हाथ से बुना कपड़ा पहले की तरह फैशन बन जाए तो बिना किसी बड़े प्रतिष्ठान के, बिना किसी बड़ी पूँजी के, हम न केवल अपनी आवश्यकताओं भर के लिए वस्त्र उत्पादन कर सकते हैं, अपितु किसान भाईयों को एक सहायक उद्योग भी मुहैया करा सकते हैं। मैं अपने सभी आमन्त्रि साथियों का इस योजना पर ध्यान आकर्षित करता हूँ।

अंत में मैं कुछ शब्द भारत के एक ऐसे मित्र के बारे में कहूंगा, जिसने कष्ट उठाया, सिर्फ इसलिए कि वह हमारे देश से प्यार करता है। इस कांग्रेस को उन कार्यों और सेवाओं के लिए श्री बी.जी. होर्निमन के प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन के लिए मेरे शब्दों की आवश्यकता नहीं होगी जो उन्होंने हमारे उद्देश्यों के प्रति समर्पित कीं। हम एक कृतज्ञ राष्ट्र हैं और हमारे मित्र इतने नहीं कि हम उन्हें भूल जाएं या उनमें से किसी को खो दें। जैसा कि आपको पता है, मि. होर्निमन को बीमारी की दशा में ही बिस्तर से उठाकर बिना किसी सूचना या सम्मान के देश से बाहर भेज दिया गया है। यह तरीका है नौकरशाही का। उनके खिलाफ हाउस आफ कामन्स में अनेक अभियोग लगाए गए हैं। उनका खंडन किया जा चुका है। उनको असत्य प्रमाणित किया जा चुका है, किंतु अभी तक न उनको वापस लिया गया है और न ही मि. होर्निमन को वापस आने की अनुमति दी गई है। इंगलैन्ड में वह स्वयं को हमारें उद्देश्य पर न्यौछावर कर रहे हैं।

हमारा अंतिम उद्देश्य है – विचारों की स्वतन्त्रता, कार्य की स्वतंत्रता, अपनी परम्पराओं का पालन करने की स्वतंत्रता और स्वतंत्रता अपना देश बनाने की, जैसा सब चाहें। हम भारत को एक सस्ता और पश्चिम का पिछलग्गू देश नहीं बनाना चाहते हैं। हमने सोचा है कि हम

अपनी सरकार को पश्चिमी ढंग की और उदारवादी बनाएं। वह हमें भविष्य में संतुष्ट कर सकेगी अथवा नहीं, मैं नहीं कह सकता। लेकिन हमें अभी से यह सचाई सोच लेनी चाहिए कि पश्चिमी जनतंत्र सभी रोगों का निदान सिद्ध नहीं हो सका है। वह अभी तक उन समस्याओं को हल नहीं कर सका है जो हमारे सामने हैं। श्रम और धन के बीच की लड़ाई में यूरोप की धज्जियां उड़ रही हैं। निम्न वर्ग उच्च वर्ग के शासन के विरुद्ध सिर उठा रहा है। हमें पश्चिम से सबक सीखना है। साथ ही ऐसे बुरे रीति-रिवाजों और परम्पराओं का त्याग करना है जो हमें आगे बढ़ने से रोकती हैं। हमारा उद्देश्य है एक ऐसा भारत, जहां सब स्वतंत्र हों। सभी को समान और पूर्णरूपेण विकास के अवसर मिलें। जहां स्त्रियों को गुलामों की तरह रहने से मुक्ति मिले और जातिवाद की भयावह दीवारें नष्ट हो जाएं। जहां कोई विशेष अधिकार वाला वर्ग या समाज न हो, जहां शिक्षा निःशुल्क और सभी के लिए समान हो, जहां पूँजीपति और जमींदार श्रमिकों और रैयत का दमन न कर सकें। जहां श्रमिक को उसके श्रम का उचित मूल्य और सम्मान मिले और गरीबी, जो आज की पीढ़ी पर सबसे बड़ा अभिशाप है, भूतकाल की वस्तु बन जाए।

अभी वह दिन दूर है। आज हमारा मार्ग कठिनाइयों से भरा है। उसमें अनेक अवरोध हैं, गहरी खाइयां हैं। आइए सचाई के साथ मिलकर आगे बढ़ें। हमें साहस, दृढ़ता और एकता के साथ अपने सपनों की मंजिल तक पहुँचना ही है।

स्वतन्त्रता या उपनिवेश

(भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तेतालीसवें अधिवेशन में दिया गया मोतीलाल का अध्यक्षीय भाषण। कलकत्ता: २९ दिसम्बर, १९२८)

नौ वर्ष पहले, मुझे राष्ट्रीय कांग्रेस का सभापतित्व करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मार्शल-ला अपने समस्त क्रूर परिणामों और जटिलताओं के साथ आया, चला गया और हम अपने विदेशी शासकों के साथ बड़े संघर्ष की तैयारियां करते रहे। विशाल दैत्य की तरह भारत ने अंगड़ाई ली और उसी अंगड़ाई भर ने ब्रिटिश शासन की नीवें हिला कर रख दी।

इस संघर्ष में हमने परिचित चेहरों के गुम होने का दुख झेला। अनेक विश्वसनीय कानून विशेषज्ञ और साहसी योद्धा खोए। हमने हकीम अजमल खाँ और लाला लाजपत राय को खोया। एक और भूतपूर्व सभापति

लार्ड सिन्हा चले गए। दूसरे राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओं में विशेषतया मगनलाल गांधी, गोपाबन्धु दास और आंध्ररत्न गोपाल कृष्णय्या हमें छोड़ कर चले गए। इस कांग्रेस की ओर से मैं अपने इस स्वर्गीय साथियों के परिवारों की गहरी संवेदना समादर सहित प्रकट करता हूँ।

अब मैं इस कार्य के बारे में आपके समक्ष अपने विचार और सुझाव रखना चाहता हूँ, जो सबसे प्रमुख है। मैं आपको चेता देना चाहता हूँ, कि यदि आप मुझसे किसी ऊंचे आदर्शों की चटपटी भाषा में रखी गई बात की आशा करते हैं, तो आपको निराशा ही हाथ लगेगी। ऐसी बात नहीं कि ऊंचे आदर्शों की मैं अवहेलना करता हूँ। मैं स्वयं ऊंचे आदर्शों का हामी हूँ बशर्ते कि आप उनका पालन करें। विशुद्ध आदर्शवाद का राजनीति में कोई स्थान नहीं होता। वह तो केवल एक सुखद सपना होता है, जो देर-सवेर जंगलीपन की मुद्रा में जागता है। शनैः शनैः विकासोन्मुख आदर्श कहीं अच्छा होता है। ऐसे ही आदर्श की छत्रछाया में किया गया सटीक कार्य क्रियात्मक विचारों से ही निर्देशित होना जरूरी है। मुझे विश्वास है कि हम सब ऐसे आदर्श पर सहमत हैं, यद्यपि हम उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं। हम सभी उसके लक्ष्य को पाने के लिए आतुर हैं, किन्तु परेशानी यह है कि हम मतभेदों में इतने जकड़े हुए हैं कि एक वृक्ष के रोपण के लिए जंगल तक नहीं तलाश सकते। इन मतभेदों का कारण हमारी असफलताएं हैं। ये ही वैचारिक द्वन्द्व के लिए उत्तरदायी हैं जिससे कोई भी सर्वसम्मत कार्य संभव नहीं हो पाता। मेरा आप से विनम्र अनुरोध है कि आप सभी स्थिति की जटिल वास्तविकताओं का साहस के साथ मुकाबला करें और तब मुझे बताएं कि ऐसा कौन-सा सही मार्ग है, जो आपकी राय में सही है।

मैं समझता हूँ कि हर व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपने देश को सम्मानपूर्वक जीने योग्य बनाए। क्या है और क्या होना चाहिए – ऐसे परिवर्तनों की सही क्रियान्विति परिस्थितियों पर निर्भर करती है और परिस्थितियां किसी भी देश में हर समय एक सी नहीं रह सकतीं।

दुनिया में कोई भी दो व्यक्ति बिल्कुल एक ही बिन्दु से और बिल्कुल

एक ही गति से आगे नहीं बढ़ा करते। वे निरन्तर परिवर्तनशील स्थितियों और दशाओं के हिसाब से समय-समय पर अपनी दिशाएं बदलते रहते हैं। हम दूसरों की गलतियों से पूरा लाभ उठा सकते हैं, किन्तु उनकी सफलताओं से बहुत ही कम। कारण स्पष्ट है। यदि हम उसी धरातल पर हैं, जिसमें दूसरों ने गलतियां की हैं तो हम उन गलतियों से बच सकते हैं। ऐसा करना सरल होता है। किन्तु यह कठिन है कि जो स्फूर्त गुण हम में नहीं हैं, उन्हें हम अपने अंदर जीवित कर सकें। हमारे सामने समस्या यही है कि जिन स्थितियों में हम रह रहे हैं। और जो सामग्री हमारे पास है उससे हम कम से कम पूंजी लगाकर इच्छित उत्पादन कैसे करें? दूसरे देशों का अन्धानुकरण केवल हमें अपने लक्ष्य से भटकाने ही में हमारी सहायता कर सकता है।

हमारे सामने जो कार्य है, उसका सही जायजा लेने के लिए हमें इन तीन प्रश्नों का उत्तर खोजना है–

१. हम कहां खड़े हैं?
२. हमारा लक्ष्य क्या हैं? और
३. हम अपने लक्ष्य पर कैसे पहुंच सकते हैं?

सबसे पहले हमें इस बारे में आश्वस्त होना चाहिए कि जहां हम खड़े हैं, वहां से आगे बढ़ने के बाद हमें अपनी प्रतिष्ठा तो नहीं गंवानी पड़ेगी। हमारी पहली प्रतिष्ठा शासन से संबंधित है और दूसरे स्वयं अपने साथ। जहां तक पहली का संबंध है, हम सभी जानते हैं जो भी राजनैतिक या नागरिक अधिकार हमारे पास हैं, वे सब सशर्त-उपहार की तरह हैं, जिन्हें हम अपने शासकों की प्रसन्नता की परिधि ही में भोग सकते हैं। वे हमसे छीने भी जा सकते हैं और सचमुच में समय-समय पर हम में से हजारों से, किसी भी क्षण, सकारण अथवा अकारण शासकों द्वारा अपनी मर्जी से छीने भी गए हैं क्योंकि उनके पास ऐसा कर पाने की असीमित स्वेच्छाचारी शक्तियां हैं। हमें बराबर आत्मबोध, स्व-विकास और स्वपूर्ति के अवसरों से वंचित रखा गया है जिनके लिए देशबन्धु चितरंजनदास अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक जूझते रहे। हमें अपने देश के आंतरिक और बाहरी मामलों में भी भागीदार बनने से रोक दिया गया है।

हम जानते हैं कि राष्ट्रप्रेम की प्रतिमूर्ति महमूदाबाद के महाराजा का

महल जब चारों ओर से भारी पुलिस ने घेरा हुआ था, तब उनके प्रतिक्रियावादी साथी समीप के पार्क में ब्रिटिश शासन द्वारा नियुक्त कमीशन की आवभगत में लगे हुए थे। महाराजा साहस के साथ कमीशन का बहिष्कार करने के लिए निर्णय पर अटल रहे। उन्होंने उसके सम्मान में किए जाने वाले किसी भी समारोह में भाग लेने से इंकार कर दिया। जब अवध का प्रमुख नवाब, यू.पी. सरकार का सेवानिवृत्त होम-मेम्बर इस नाते सर्वोच्च सम्मान से विभूषित, केवल इस कारण कि उसकी एक राय सरकार को पसंद नहीं, अपने ही घर में कैद किया जा सकता है तो साधारण नागरिक की आजादी की कल्पना करना ही व्यर्थ है।

सच तो यह है कि हमें पीढ़ी दर पीढ़ी दासता की जंजीरों में बांधे रखने के लिए नए-नए प्रतिबंधों के बुनने की प्रक्रिया निरंतर चालू है। इस आधार को पुष्ट करने के उद्देश्य से हमारी खनिज सम्पदा का दोहन हो रहा है। इन सारी बातों के लिए सरकार तो दोषी और उत्तरदायी है ही, वर्तमान में हम लोग भी इस दोषारोपण से स्वयं को नहीं बचा सकते। किसी भी राष्ट्र की शक्ति या कमजोरी उसे एक सूत्र में बांधे रखने के गुण की शक्ति या कमजोरी पर निर्भर होती है। हमारे मामले में, सदियों से यह गुण बहुत अधिक मजबूत नहीं रहा है और वर्तमान के बदले हुए परिपेक्ष्य में यह गुण पहले से भी काफी कमजोर है। यह सचाई नजरन्दाज नहीं की जा सकती कि आज हम बहुत ही छोटी-बड़ी इकाइयों में बंट गए हैं जो न्यूनाधिक रूप से अव्यवस्थित और आचारभ्रष्ट हैं। जनता में बढ़ती गरीबी और अविद्या तथा विभिन्न वर्गों के बीच बड़े पैमाने पर बढ़ती दुश्मनी के लिए निःसंदेह सरकार दोषी है, किंतु क्या इसमें हमारे अपने समाज की प्रणाली का दोष बिल्कुल भी नहीं है जिसने अछूत और शोषित वर्गों को जन्म दिया और स्त्रियों पर अनेक ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिए जिससे वे अपने अनेक स्वाभाविक अधिकारों से ही वंचित नहीं हो गई, अपितु राष्ट्र की सेवाओं से भी दूर कर दी गई। जातीय विचारों की इन असमानताओं के लिए अकेली सरकार पर ही दोष नहीं मढ़ा जा सकता।

सर्वदलीय सम्मेलन की कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में भारत में जातीय समस्या पर भी विचार व्यक्त किए हैं। असने इसका जो निदान सुझाया है,

मुझे विश्वास है, यह कांग्रेस भी उसे स्वीकार करेगी।

धर्म का सिद्धांत चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, वह आज हमारे दैनिक जीवन में अंधविश्वास और रूढ़िवादिता, असहनशीलता, स्वार्थ और अनेक अवगुणों के साथ-साथ संकुचित विचारों का प्रतीक बन गया है। ऐसे गुण नकारात्मक बन गए हैं जिनसे एक सबल समाज का निर्माण होता है। आज धर्म की मुख्य प्रेरणा यह बन गई है कि जो उसे नहीं मानता, उससे घृणा करो। धर्म के पवित्र नाम से आज स्वाभाविक रूप से किए गए अपराधों से भी बड़े और कहीं अधिक अपराध किए जाते हैं।

शिक्षा और प्रगति का उद्देश्य होता है व्यक्ति में व्यक्तित्व और सदगुणों का विकास। वह उसे अपने पड़ोसियों से सहयोग करना सिखाते हैं, उसे यह महसूस कराते हैं कि समाज के हित ही में उसका हित है। यदि ऐसा हो, तभी स्वार्थपूर्ण और अपने ही हित का ध्यान रखने वाली भावनाएं तथा मनुष्य की समस्त शक्तियां आपसी प्रतिस्पर्धा से सर्वसाधारण के हितार्थ पारस्परिक सहयोग की भावना की ओर मोड़ी जा सकती हैं। जो रूप आज धर्म का है, उसे विभाजित करने वाली जबरदस्त शक्ति का नाम दिया जा सकता है। आज वह व्यक्ति-व्यक्ति के बीच दरारें और एक परिपूर्ण, सुखद और सहयोगी राष्ट्रीय जीवन के निर्माण में अवरोध उत्पन्न करता है। सामाजिक मामलों में उसके प्रतिक्रियावादी प्रभाव की बात जाने दीजिए, उसने राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों पर भी आक्रमण किया है और इस प्रकार जीवन के हर क्षेत्र पर प्रभाव डाला है। राजनीति से उसका सम्बन्ध किसी भी दिशा में फलदायी नहीं रहा। धर्म का स्तर गिरा और राजनीति अंधे कुएं में जा गिरी। अतः इन दोनों का एक दूसरे से विमुख होना ही सही निदान है।

जहां तक दूसरे प्रश्न का कि हमारा लक्ष्य क्या है – प्रश्न है, मद्रास कांग्रेस ने घोषित किया है कि लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य है। सर्वदलीय कमेटी ने 'उपनिवेश-रूप' की संस्तुति की है। मैं आपकी सहमति से अपनी इच्छा व्यक्त करना चाहता हूँ। मैं पूर्ण स्वराज्य के पक्ष में हूँ – पूर्ण स्वराज्य जितना भी वह पूर्ण हो सकता है।

मुझे विश्वास नहीं कि कोई भी भारतीय, चाहे वह पुरुष हो चाहे स्त्री, किसी पार्टी का सदस्य हो या ग्रुप का या न किसी पार्टी का या न किसी ग्रुप का, ऐसा हो जो स्वतन्त्रता से प्यार न करता हो, उसे स्वीकार करना न चाहे। वैचारिक मतभेद तब पैदा होते हैं जब प्रश्न यह आता है कि स्वतन्त्रता को ले सकना या उसे अक्षुण्ण रूप रख सकना सम्भव है या नहीं। जिन्हें स्वयं पर और अपने देशवासियों पर विश्वास है, उनका एक ही उत्तर है – 'हां' और मैं स्वयं भी उन ही में से एक हूँ। किन्तु ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो इस प्रश्न के उत्तर में केवल सिर हिला कर रह जाएंगे। कुछ दंड से धमका कर और कुछ संदेह के कारण। पहले वालों का लक्ष्य है – पूर्ण स्वराज्य और बाद वालों का 'उपनिवेशवाद'। मैं पूर्ण स्वराज्य और उपनिवेशवाद के आपसी सम्बन्धों की निरर्थक पूछताछ में समय गंवाना नहीं चाहता। मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि सैद्धांतिक रूप से वे एक ही मूल के हैं या दो के, अथवा उनमें से एक दूसरे ही का रूप है या नहीं। मैं उपनिवेशवाद को अपना लक्ष्य घोषित नहीं कर सकता। यह एक दूसरी पार्टी का लक्ष्य हो सकता है, जिस पर मेरा कोई अधिकार नहीं।

मैं वायसराय के भाषण के एक अन्य अंश पर आपका ध्यान दिलाना चाहूँगा। उन्होंने विनाश की एक काली तस्वीर खींची है कि भारत अपने उन झूठे और स्वार्थी मित्रों के हाथों से कष्ट उठा सकता है जो कि स्वतंत्रता की दलदल की ओर प्रेरित करते हैं। स्वतंत्रता को दलदल कहने की बात सर्वथा मौलिक है। यह कहना और अच्छा रहता कि हमें स्वतंत्रता पाने के लिए दलदल को पार करना होगा। किन्तु दलदल ने तो हमें चारों ओर से घेर ही रखा है। हमारे पास इसे पार करने के अतिरिक्त कोई चारा ही नहीं है। हमारी मित्रों का कहना है कि यह केवल समय, शक्ति और बलिदान का अपव्यय होगा कि पहले हम 'उपनिवेश-स्तर' की दलदल में संघर्ष करें और जब उसे पा लें, तो फिर शुरू से पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करें।

स्वतन्त्रता के यह मतलब नहीं हैं कि हम सारी दुनिया से अलग-थलग हो जाएं। यदि आपको इस दुनिया में रहना है तो उनके साथ, जो आप ही की तरह इस दुनिया में रहते हैं, सम्बन्ध रखने ही होगें। दुनिया की वर्तमान स्थितियों में किसी भी स्वतंत्र देश के लिए न तो यह आवश्यक है और न

संभव कि वह दूसरे देशों से राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों को तोड़ दे। सचाई यह है कि जितने स्वतन्त्र आप होगें, आपके लिए चारों ओर से सम्बन्ध स्थापित करने उतने ही आवश्यक होंगे। अत: जब हम ब्रिटिश-सम्बन्धों के अलगाव की बात करते है, तो हमारा यह अर्थ नहीं होता कि सभी सम्बन्ध तोड़ लिए जाएंगे, अर्थ होता है कि स्थापित सम्बन्धों में, यदि आवश्यक हुआ, कुछ ऐसे उचित परिवर्तन जो एक स्वतन्त्र राष्ट्र की प्रभुसत्ता की दृष्टि से आवश्यक हों। ये परिवर्तन भी इस बात पर निर्भर होंगे कि हमें स्वतन्त्रता किस सीमा तक मिलती है। यदि 'उपनिवेशिक स्तर' रहा, तो ये परिवर्तन क्या होंगे, इसे भलीभांति समझा जा सकता है। याने 'एक स्वायत्तशासी राष्ट्र, स्वतन्त्र और ब्रिटिश कामनवैल्थ आफ नेशन्स का समान सदस्य'। और यदि पूर्ण स्वतंत्रता मिली, तो भारत ब्रिटिश कामनवैल्थ आफ नेशन्स से बाहर अपने पैरों पर खड़ा होगा और ग्रेट ब्रिटेन से उसके सम्बन्धों का प्रारूप सन्धि एवं आपसी सहयोग पर आधारित होगा।

बेलगाम कांग्रेस की अध्यक्षता करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था—

'मेरे विचार में,यदि ब्रिटिश सरकार का मतलब वही है, जो वह कहती है और समानता के आधार पर ईमानदारी से हमारी सहायता करना चाहती है तो ब्रिटिश सम्बन्धों से पूर्ण विच्छेद की अपेक्षा यह हमारी बड़ी विजय है। इसलिए मैं साम्राज्य के अंतर्गत स्वराज्य के लिए संघर्ष करूंगा। किन्तु सारे सम्बन्ध विच्छेद करने में भी नहीं हिचकूंगा यदि ब्रिटेन की अपनी गलती से यह विच्छेद आवश्यकता बन गया।'

जहां तक भारत के प्रश्न पर ब्रिटेन की पूर्व घोषणा का सम्बन्ध है— वह साम्राज्य के अंतर्गत पूर्ण समानता ही की है। वह योजना सर्वदलीय सम्मेलन ने बनाई थी और इसी कारण उसी में इसे महात्मा जी के विचारों सहित स्वीकार किया गया।

सच तो यह है कि इंगलैन्ड से केवल अपनी शक्ति सामर्थ्य दिखाने के अतिरिक्त कुछ नहीं पा सकते। उस शक्ति और सामर्थ्य के लिए हमें अपने

को और अपने साधनों को गठित करना होगा। ऐसा ही संगठन उनके लिए आवश्यक है जो 'उपनिवेशिक स्तर' चाहते हैं और ऐसा ही उनके लिए जो पूर्ण स्वतंत्रता चाहते हैं।

मैं यहां उन लोगों के मन में वसी इस शंका को कि जैसे ही हमें 'उपनिवेश' का दर्जा मिला, हम ब्रिटिश संवंधों को उतार फेकेंगे– थोड़ा हल्का करना चाहूंगा। अपने भाषण में लार्ड इरविन ने कहा था–

ग्रेट ब्रिटेन में रहने वाले लोग जो भारत को शीघ्र से शीघ्र किसी भी सम्भव घड़ी में क्राउन के एक अन्य बड़े उपनिवेश के रूप में देखने के हृदय से इच्छुक हैं, वड़े ही निराश और हताश होंगे यदि ब्रिटिश विचारतंत्र इस बात पर सहमत न हो। क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से यह लग रहा है कि भारत द्वारा तथाकथित 'उपनिवेश स्तर' का मूल्य ब्रिटिश कामनवैल्थ से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद की पहली सीढ़ी के रूप में लगाया गया है।

जो भी हो, हमारा लक्ष्य स्वतंत्रता है। उसका रूप और उसमें निहित अधिकार क्षेत्र, उस सीमा की परिस्थितियों पर निर्भर है, जब वह मिले। सबसे पहला और अत्यंत महत्वपूर्ण कदम है, हमें अपने घरों की व्यवस्था देना। इस उद्देश्य के लिए सभी दल कांग्रेस के झंडे तले जुट जाएं। कंधे से कंधा मिला कर समान पथ पर लक्ष्य की ओर, अंत तक चलते रहें। मैं इसके लिए यह कार्यक्रम प्रस्तावित करता हूँ–

१. जैसा कि सर्वदलीय सम्मेलन में सहमति व्यक्त की गई थी, सारे देश में समाचारपत्रों, मंचों और गांव–गांव में भाषण आदि नियोजित कर जातीय समस्याओं के निदान के लिए सघन प्रचार
२. दिल्ली एकता सम्मेलन, और मद्रास कांग्रेस में पारित सभी प्रस्तावों के साथ–साथ इस कांग्रेस में निर्णीत जातीय मसलों के निदान के लिए इसी प्रकार के एक सघन प्रचार तंत्र का गठन
३. अछूतों और दलित वर्ग के मध्य कार्य
४. श्रम, कृषि और उद्योगों का संगठन
५. अन्य ग्राम्य–संगठन

६. खादी को लोकप्रिय बनाना तथा विदेशी कपड़ों का बहिष्कार
७. राष्ट्रीय उत्पादन और सामाजिक सम्बन्धों को क्षति पहुंचाने वाले रीति-रिवाजों के विरुद्ध विशेषकर पर्दा प्रथा और स्त्रियों के अन्य शोषणों के विरुद्ध अभियान
८. शराबखोरी और अफीम के विरुद्ध सघन अभियान
९. प्रचार

अपने सभी दलों के लिए यह एक सामान्य कार्यक्रम है। यह उनके दृष्टिकोण से भी उतना ही आवश्यक है, जितना कि कांग्रेस के। मुझे पूरी आशा और विश्वास है कि वे इस कार्यक्रम को अपना पूरा सहयोग देंगे। यदि हम सभी इन दिशाओं में पूरी ईमानदारी और पूरी शक्ति से काम करें तो लक्ष्य अत्यंत पास आ जाएगा। किंतु यदि हम इस कार्यक्रम को पूरी तरह क्रियान्वित नहीं कर सके, जो हमारे उद्देश्य की पूर्ण आशाओं से भरा है, फिर चाहें हमें दूसरे दलों का सहयोग मिले या न मिले, तो इससे अधिक बड़ा दुर्भाग्य कुछ भी नहीं होगा। सरदार बल्लभ भाई पटेल और बारदोली ने हमें दिखा दिया है कि विशुद्ध शांतिपूर्ण सीधी कार्रवाई भी सम्भव है और सफलता दे सकती है।

विदेशों में बसे अपने देशवासियों को हमें नहीं भुलाना चाहिए। यद्यपि श्री वी.एस.एस. शास्त्री द्वारा सम्पन्न महान योगदान ने दक्षिण अफ्रीका की स्थिति में कुछ सीमा तक सहजता ला दी है , फिर भी वहां की स्थिति पर सतर्कता पूर्वक नज़र रखनी आवश्यक है। कीनिया की समस्या दिन प्रतिदिन गंभीर होती जा रहीं है और वहां उसे भारतीयों को धमकियों का सिलसिला चरम सीमा पर पहुंच गया है, यद्यपि जब वे वहां जाकर बसे, तब तक कोई यूरोपियन वहां नहीं पहुंचा था। फिजी और ब्रिटिश गुवाना में जो हमारे देशवासी बसें हैं, उन पर ब्रिटिश-शोषण का दबाव बढ़ता जा रहा है। उन्हें भूलने की बजाए हम उनकी जो भी सम्भव सहायता कर सकते हैं सर फीरोजशाह मेहता के कथनानुसार वह है-

हम यहां स्वतंत्रता प्राप्त करें।

मुझे जो कुछ कहना था, मैं कह चुका। आपने मुझे धैर्यपूर्वक सुना। मेरी सेवाएं, जैसी भी हैं, जितनी भी हैं, सभी आपको अर्पित हैं। आइए, अपने मतभेद भुलाकर हम कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ें। जीत हमारी ही होगी।